अंक : १३५
मार्च २००४
फाल्गुन-चैत्र
वि.सं. २०६०

संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

हिन्दी

सब रंग चढ़ी चढ़ी जात हैं,
मिथ्या जगत के रंग ।
कल्मष धोत है भक्तों के,
गुरुज्ञान की गंग ॥
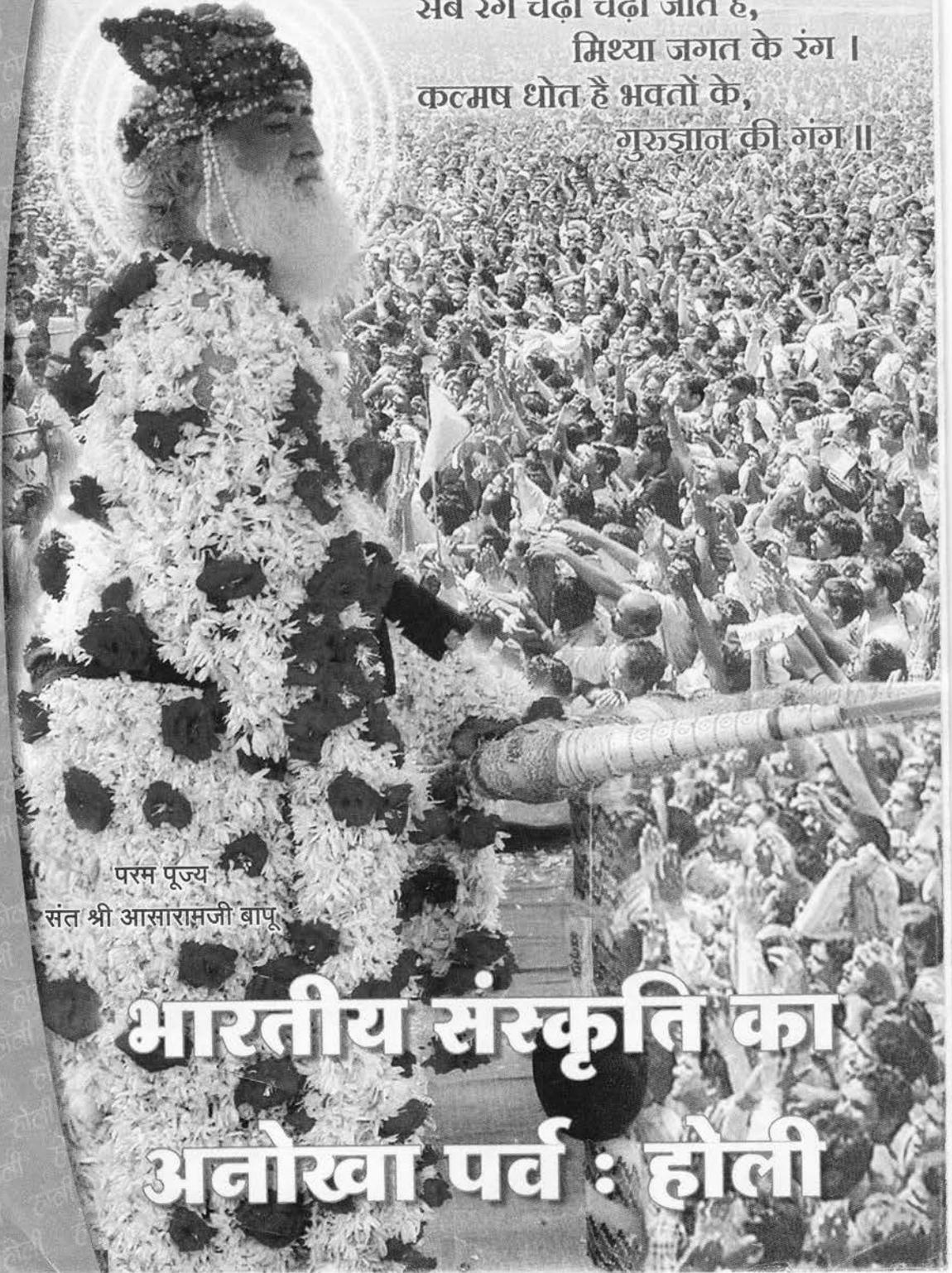
परम पूज्य
संत श्री आसारामजी बापू

भारतीय संस्कृति का अनोखा पर्व : होली

खुशनसीब हैं वे मुस्लिम भाई, जिन्हें पूज्य बापूजी के दर्शन-सत्संग का सुअवसर प्राप्त हुआ।
करतल ध्वनि करके कीर्तन में पावन हो रहे भक्तजन। (संतरामपुर, गुज.)

धन्य धरा पाकिस्तान की हुई, जब संत चरणरज पायी। दरवेश बापू के दर्शन से, जनता फूलें न समायी ॥
(अब्दुल्लाशाह गाजी दरगाह परिसर)

विवाह पत्रिका

यह विवाह पत्रिका है, सुंदर वचनों से युक्त। आशीर्वाद बापूजी का है, शुभ संकल्पों से युक्त ॥
सप्तपदी और समृद्धि का, ऐश्वर्य है जिसमें। सबका मंगल सबका भला हो, यही चाहना इसमें ॥

पूज्य बापूजी के आशीर्वचनों से युक्त आकर्षक, रंगीन विवाह पत्रिका सभी
संत श्री आसारामजी आश्रमों एवं श्री योग वेदांत सेवा समितियों के स्टॉलों पर उपलब्ध है।

ऋषि प्रसाद

वर्ष : १४ अंक : १३५
मार्च २००४ मूल्य : रु. ६-००
फाल्गुन-चैत्र, वि.सं.२०६०

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रु. ५५/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक: रु. २००/-
(४) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक: रु. ३००/-
(४) आजीवन : रु. ७५०/-

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) द्विवार्षिक : US $ 40
(३) पंचवार्षिक: US $ 80
(४) आजीवन : US $ 200

कार्यालय '**ऋषि प्रसाद**' श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) २७५०५०१०-११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site: www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : कौशिक वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-३८०००५.
मुद्रण स्थल : हार्दिक वेबप्रिंट, राणीप और विनय प्रिंटिंग प्रेस, अमदावाद।
सम्पादक : कौशिक वाणी
सहसम्पादक : प्रे. खो. मकवाणा

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग

सोनी चैनल पर **'संत आसाराम वाणी'** सोमवार से शुक्रवार सुबह ७-३० बजे व शनिवार और रविवार सुबह ७-०० बजे
संस्कार चैनल पर **'परम पूज्य लोकसंत श्री आसारामजी बापू की अमृतवर्षा'** रोज दोप. २-०० बजे तथा रात्रि ९-४० बजे
साधना चैनल पर **'संत श्री आसारामजी बापू की सत्संग-सरिता'** रोज रात्रि ९-०० बजे
आस्था चैनल पर **'संत श्री आसारामजी बापू की अमृतवाणी'** सुबह ८-०० दोप. २-३० बजे

प्रभु की त्रिगुणी माया

प्रभु की त्रिगुणी माया, हर कोई समझ नहीं पाया ।
करे गुरु सेवा-सुमिरन, वो ही भव से तर पाया ॥
प्रभु की त्रिगुणी माया...

लाया था साथ में क्या जो, गया तो तू है रोया ।
जायेगा संग में क्या जो, मिला तो तू है हर्षाया ॥
प्रभु की त्रिगुणी माया...

जगत की तृष्णा ने, तुझे ऐसा भरमाया ।
है राजाओं का राजा, भिखारी बनता आया ॥
प्रभु की त्रिगुणी माया...

किसीको काम-क्रोध में, किसीको मद, लोभ, मोह में ।
किसीको मान-बड़ाई में, है इसने ही फँसाया ॥
प्रभु की त्रिगुणी माया...

ढूँढ़ने को कस्तूरी, भटकता है मृग वन में ।
खजाना भीतर ही है पर, तू ताला खोल न पाया ॥
प्रभु की त्रिगुणी माया...

हुआ कोई पुण्य उजागर, जो गुरु दर पर पहुँचाया ।
पा लिया मैंने सब कुछ, शीश जब यहाँ झुकाया ॥
प्रभु की त्रिगुणी माया...

था मैं दोषों का पुतला, फिर भी सद्गुरु ने अपनाया ।
न देखी थी राह जो अब तक, उस पर चलना सिखाया ॥
प्रभु की त्रिगुणी माया...

जन्मों के संस्कारों को, ज्ञानाग्नि में जलाया ।
मिला आनंद अलौकिक, जब हरिनाम का जाम पिलाया ॥
प्रभु की त्रिगुणी माया...

करी कृपा गुरुवर ने, राज है यह समझाया ।
यह माया गैर नहीं है, तूने ही इसे रचाया ॥
प्रभु की त्रिगुणी माया...

- विकास खेमका, अमदावाद.

*

मँगवाओ 'ऋषि प्रसाद'

मँगवाओ 'ऋषि प्रसाद', जीवन बन जाय आत्मप्रसाद ।
प्रथम पृष्ठ पर सद्गुरु-दर्शन,
दूजे में भगवान का कीर्तन ॥
तीजे में सद्गुरु बापू का, छपता है सत्संग सुहाना ।
परम प्रभु का वर्णन जिसमें, पढ़ लो मिले उजाला ॥
सद्गुरुजी की अमृतवाणी, जो शास्त्रों में वर्णित सारी ॥
पढ़ ले दुनिया ऐ दीवानी, खुल जाये है घट का ताला ।
हरि ॐ का नाम गुँजावें, नारायण का नाद करावें ॥
परम तत्त्व से भेंट करावें, हमें आत्मपद में पहुँचावें ।
सबको ही वे ब्रह्म बताते, सारे ब्रह्मांड का सार जताते ॥
कीर्तन-प्राणायाम-ध्यान-योग से,
ईश्वरानंद का स्वाद चखाते ।
संत-वचन और शास्त्र-वचन भी,
भक्तों के अनमोल भजन भी ॥
छपती जिसमें राम नाम की, महिमा अनुपम आला ।
सच्चाई का मार्ग लखावें, शांति, एकता और प्रेम बढ़ावें ॥
'ऋषि प्रसाद' पढ़ो हे भाई, दिल बन जाये विशाला ।
हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख-ईसाई,
एक बार तो पढ़ लो भाई ।
जनम-जनम की गुत्थी सुलझे, पी ले अमृत का प्याला ।
आत्मज्ञान की राह दिखावें, मानवता का पाठ पढ़ावें ।
भ्रमित हुए लोगों के खातिर,
'ऋषि प्रसाद' है दिव्य उजाला ॥

- राजनारायण

*

न भेद लेश है कहीं, चिदात्म एक तत्त्व है ।
न शोक है न मोह है, सुखात्म सर्व विश्व है ॥
न भेद देख विप्र, गाय, स्वान में, कुरंग में ।
असंग निर्विकल्प नित्य, रंग श्याम रंग में ॥
अशुद्ध चित्त भ्रांति से, अनेक रंग देखता ।
विशुद्ध चित्त सर्व मांहि, एक तत्त्व पेखता ॥
सुचित्त ! त्याग मूढ़ता, न भूल भेद भंग में ।
अपक्य रंग त्याग भोला ! रंग श्याम रंग में ॥

- श्री भोले बाबा

जीव का स्वभाव

※ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ※

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है :

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ॥

'हे अर्जुन ! शरीररूप यंत्र में आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को अंतर्यामी परमेश्वर अपनी माया से उनके कर्मों के अनुसार भ्रमण कराता हुआ सब प्राणियों के हृदय में स्थित है।'(गीता : १८.६१)

आपके अंदर एक चैतन्य सत्ता है जिसकी कीर्ति अनेकानेक विधियों से गायी जाती है और वह है आपकी आत्मा। अज्ञान के कारण आपके और उसके बीच नासमझी का पर्दा पड़ गया है, इसीलिए आप उसे नहीं जानते हो। पर्दे का तात्पर्य है ख्यालों की भ्रांति।

एक सम्राट था - अजीतसिंह। एक दिन उसने भाँग पी ली। मन पर नशे का पर्दा आ गया और वह अपने को भिखारी मानने लगा। जब तक भाँग का नशा चढ़ा हुआ था, तब तक वह सम्राट होकर भी भीख माँग रहा था, चिल्ला रहा था : 'एक रुपया दे दे, भैया ! तेरी जेब रहे ना खाली... तेरी रोज मने दीवाली...'

लेकिन जब उसका नशा उतार दिया गया, तब उसे पता चला कि 'अरे ! मैं तो स्वयं सम्राट हूँ !' ऐसे ही हम हैं तो स्वयं परमात्मा के अविभाज्य अंग लेकिन अज्ञानतावश अपने को जात-पाँतवाला जीव मान रहे हैं। आप ईश्वर के सनातन अंश हो लेकिन अज्ञान के कारण अहंकार में, वासना में, काम-क्रोध-लोभ में आकर शरीर से बँध जाते हो।

बच्चे से लेकर बूढ़े तक, अनपढ़ से लेकर विद्वान तक कोई भी बंधन नहीं चाहता, कोई भी छोटा होना नहीं चाहता। 'भगवान ! मैं तुच्छ हूँ, दीन हूँ, कुछ नहीं हूँ...' यह भी इसीलिए कहता है ताकि कुछ बन जाय। अपना बड़प्पन दिखाने के लिए ही छोटा होने का नाटक करता है। दरिद्र और दीन-हीन भी अपने माहौल में स्वयं को सर्वश्रेष्ठ गिनेगा क्योंकि जीव का वास्तविक स्वरूप सर्वश्रेष्ठ है। जैसे प्रतिबिम्ब का मूल स्वरूप बिम्ब है और आईने में दिखनेवाले चेहरे का मूल स्वरूप असली चेहरा होता है, ऐसे ही अंतःकरणरूपी आईने में आये हुए जीवरूपी प्रतिबिम्ब का मूल स्वरूप परमात्मा है। जीवरूपी प्रतिबिम्ब की श्रेष्ठ होने की चाह उसके मूल स्वरूप की सर्वश्रेष्ठता का परिचय देती है।

उसका मूल स्वरूप क्या है ? **सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म...** ईश्वर का स्वभाव सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप और जिसका कभी अंत न हो ऐसा, अनंतस्वरूप है।

कोई भी प्राणी मरना नहीं चाहता। बूढ़ा आदमी भी मरना पसंद नहीं करता। भले वह परेशान है, चिल्ला रहा है कि 'मर जाऊँ तो अच्छा...' परंतु जब मौत आती है उस समय यदि उसके अंतःकरण की गहराई में देखो तो वह जीना चाहता है। कीड़ी से लेकर हाथी तक, दैत्यों से लेकर देवताओं तक, मूर्खों से लेकर विद्वानों तक जीवमात्र सदा रहना चाहता है।

बुद्धिपूर्वक तो जानते हैं कि ये चहचहाते हुए पक्षी एक दिन मर-मिटेंगे, पेड़-पौधे जर्जरीभूत हो जायेंगे, जो बड़ी-बड़ी इमारतें दिखती हैं वे एक दिन मिट्टी में मिल जायेंगी, ये घूमते हुए पंखे भी नहीं रहेंगे और उन पंखों की हवा लेनेवाले अपने शरीर भी एक दिन राख में मिल जायेंगे। इस बात को सभी जानते हैं कि जो लड़ाई-झगड़ा करके सुख लेना चाहते हैं अथवा तो 'जियो और जीने दो...' के सिद्धांत से सुख लेना चाहते हैं, वे भी सुख के साधनों को छोड़कर एक दिन मर जायेंगे। बुद्धिपूर्वक समझते हैं कि **'आया है सो जायेगा, राजा रंक फकीर।'** एक दिन सब मर-मिटेंगे, फिर भी मरने का दिन किसीको भी स्वीकार्य नहीं है।

दर्शनशास्त्र का प्राध्यापक महाविद्यालय में पढ़ाता है : 'मनुष्य मरणशील प्राणी है। उदाहरणस्वरूप सुकरात मनुष्य थे, अतः मर गये।' लेकिन वह सुकरात की जगह पर अपना उदाहरण नहीं रखता कि 'मैं मनुष्य हूँ, अतः मैं मरणशील हूँ।'

अपनी मौत को हम भुला देते हैं, दूसरों के सिर पर डाल देते हैं। अपनी मौत को भूलने की कोशिश करते हैं। क्यों ? क्योंकि हमारा मूल स्वभाव, परमात्म-स्वभाव है ही ऐसा, जिसकी कभी मौत नहीं होती।

जीव का मूल स्वभाव है परमात्मा। परमात्मा सदा है, सर्वत्र है, सत्यस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है, अनंतस्वरूप है, सुखस्वरूप है, आनंदस्वरूप है। इसीलिए प्रत्येक जीव सदा रहना चाहता है और सदा सुखी रहना चाहता है।

कोई कहे कि 'आपका यह वर्ष सुख-शांति से बीते, फिर जो होना हो वह हो...' तो आपका अंतःकरण इसे स्वीकार नहीं करेगा। 'आप जीवन भर सुखी रहें लेकिन मौत के बाद नरक में जायें...' इस बात को भी आप स्वीकार नहीं करेंगे। मौत के बाद भी हम सुखी रहें इसीलिए लोग यहाँ यज्ञ करते हैं, उसमें कुछ सामग्रियाँ 'स्वाहा' करते हैं।

जो व्यक्ति आपको मान देता है, प्यार देता है वह आपको श्रेष्ठ दिखता है और जो दुत्कारता है वह दुष्ट दिखता है। जो आपकी गरिमा को तोड़ता है, आप उसीको तोड़ने के लिए राजी हो जाते हो। फिर चाहे माँ हो, बाप हो, पड़ोसी हो चाहे परमात्मा ही क्यों न हो ! जो आपको कुचलता है वह परमात्मा किस बात का ? जो आपकी इज्जत-आबरू, आयुष्य और उपलब्धियों की रक्षा करे वही तो परमात्मा है। उस अंतर्यामी चैतन्य आत्मदेव का यह स्वभाव है कि वह सदा रहता है, आनंदस्वरूप है, सर्वज्ञ है।

एक राजा बड़े परिश्रम के बाद चक्रवर्ती सम्राट बना। भारी नरसंहार करने के बाद, कई स्त्रियों का सुहाग छीनने के बाद, कई बच्चों के माँ-बाप छीनने और जुल्म करने के बाद ही तो राजा चक्रवर्ती सम्राट बनता है ! कावा-दावा, हत्या, दण्ड, भेद आदि जो कुछ करना चाहिए वह किया और अहंकार को पोसनेवाली गद्दी पाने में सफल हो गया। राज्य की पुरानी प्रथा थी कि जो सम्राट बनेगा वह कीर्तिस्तंभ पर स्वर्णाक्षरों में अपना नाम खुदवायेगा। अतः वह भी कीर्तिस्तंभ पर अपना नाम खुदवाने गया। वहाँ के अध्यक्ष ने कहा : ''यह लीजिये मजदूर तथा सारे साधन और अपना नाम आप ही खुदवा लीजिये।''

सम्राट कीर्तिस्तंभ के पास गया तो देखकर हैरान रह गया कि सारा स्तंभ नामों से भरा पड़ा है। उस पर ऐसी कोई जगह बाकी न थी जहाँ वह अपना नाम लिखवाये।

सम्राट ने अध्यक्ष के पास आकर कहा : ''यह स्तंभ तो पूरा भरा हुआ है। कहीं भी खाली जगह नहीं है।''

अध्यक्ष बोला : ''आप एक-दो का नाम मिटवा दीजिये और अपना नाम खुदवा दीजिये।''

सम्राट : ''चक्रवर्ती सम्राट का नाम कैसे मिटाया जा सकता है ?''

अध्यक्ष : ''अरे महाराज ! यह काम तो कई सम्राट कई बार कर चुके हैं। ऐसे कीर्तिस्तंभ भी सृष्टि की परंपरा में कई बार बने और मिट गये। आप ही एकमात्र चक्रवर्ती नहीं बने हैं। इतने सम्राट बन गये कि धूलि के कण तो शायद गिने जा सकते हैं, लेकिन कितने लोग चक्रवर्ती सम्राट बनकर नष्ट हो गये, यह नहीं गिना जा सकता।''

वशिष्ठ महाराज कहते हैं : 'हे रामजी ! मनुष्य के चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष बीतते हैं, तब ब्रह्माजी का एक दिन होता है। ऐसे ब्रह्माजी सौ वर्ष तक जीते हैं। ब्रह्माजी के एक दिन में चौदह इन्द्र बदल जाते हैं और एक इन्द्र के राज्य में हमारी हजारों पीढ़ियाँ बदल जाती हैं। जैसे हमारे जीवनकाल में मच्छर-मक्खियों की हजारों तथा कीटाणुओं की लाखों पीढ़ियाँ बदल जाती हैं, वैसे ही जगत की उत्पत्ति से आज तक कितने ब्रह्माजी हुए हैं, यह भी नहीं गिन सकते।'

इस जगत में कोई शरीरधारी, उसकी कीर्ति, उसका स्वभाव शाश्वत नहीं रहता। फिर भी हम चाहते हैं कि हमारी कीर्ति बनी रहे, हमारा सुख

बना रहे और हम बने रहें।

हर इन्सान मुक्ति चाहता है, बंधन कोई नहीं चाहता। हर आदमी सदा रहनेवाला सुख चाहता है, क्षण भर का सुख कोई नहीं चाहता। 'हम सदा मुक्त रहें, सब कुछ जानें और सदा आनंद में रहें...' - यह सबकी माँग है और मुक्तता, सर्वज्ञता तथा आनंदस्वरूपता यही आत्मा का स्वभाव है। लेकिन हम शरीर के साथ जुड़ जाते हैं इसलिए आत्मा का स्वभाव अनात्मा में अध्यस्त हो जाता है और अनात्मा का स्वभाव हम आत्मा पर थोप देते हैं।

एक आदमी ने खूब शराब पी ली और घर में बैठे-बैठे चिल्लाने लगा : 'मुझे मेरी पत्नी के पास ले चलो। मुझे मेरा बच्चा दिखाओ। मुझे मेरे घर ले चलो।' अब उसे उसके घर से बाहर निकालकर किसी नये घर में ले नहीं जाना है, किसी दूसरी महिला का हाथ नहीं पकड़ाना है, कोई और बच्चा गोद में नहीं धरना है अपितु केवल उसका नशा उतारना है। कई लोग उसे समझा रहे हैं कि 'तुम अपने ही घर में बैठे हो, यह तुम्हारी पत्नी है, यह तुम्हारा बच्चा है, यह तुम्हारी माँ है।'

जो इस नशेबाज को समझा रहे हैं, वे भी किसी नशेबाज से कम नहीं हैं। उनको भी नशा चढ़ा हुआ है क्योंकि नशेबाज को उस समय समझाया नहीं जाता जब वह नशे में होता है। उसका नशा उतरने दीजिये, वह अपने-आप समझ जायेगा। नशे में तो उसने अपने ऊपर किसी दूसरे का स्वभाव थोप लिया, इसीलिए इतना दुःखी है। नशा उतरने पर उसका दुःख स्वतः चला जायेगा।

ऐसे ही हम भी आत्मा पर अनात्मा का स्वभाव थोप देते हैं। आत्मा का स्वभाव है सत्, चित् और आनंद। शरीर का स्वभाव है असत्, जड़ और दुःखरूप। शरीर असत् है। यह पहले नहीं था, बाद में भी नहीं रहेगा। इसलिए असत् शरीर का अपना कोई अस्तित्व नहीं है और आत्मा का कभी नाश नहीं होता।

केवल अज्ञान का नशा उतारकर आप अपने मूल स्वभाव में, आत्मस्वभाव में स्थिर हो जायें तो आपके लिए कोई दुःख न बचेगा।

*

सब दुःखों की एक दवाई !

*** संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ***

सब दुःखों की एक ही दवाई है, दुःखरहित होने का एक ही उपाय है कि जहाँ दुःख, शोक, मृत्यु और जन्म भी नहीं है, ऐसे अपने आत्मा को जानने का अभ्यास करें। जहाँ दुःख नहीं पहुँच पाता उस अपने आत्मस्वरूप को पहचानने का अभ्यास करें। अपने आत्मप्रसाद को प्राप्त हों। सब आत्मस्वरूप देखें। जैसे आग आग को नहीं जलाती, पानी पानी को नहीं डुबाता, वैसे ही आत्मभाव से सबको देखने पर आपको दुःख देनेवाला कोई बचेगा ही नहीं।

दुःख एवं सुख, दोनों को गुजरने दें। 'मैं उनसे न्यारा हूँ, उनका साक्षी हूँ।' ऐसा चिंतन तो करें लेकिन 'मैं साक्षी हूँ' इसका बोझ भी न लें। तनाव, अहंकार नहीं लेकिन हकीकत की स्मृति... यदि हकीकत की स्मृति आयेगी तो हकीकत में स्थिति हो जायेगी। 'हक' में अर्थात् सत्य में स्थिति हो जायेगी। जो सत्य है वह आद्य सत् है, युगों से सत् है, अभी भी सत् है और बाद में भी सत् रहेगा।

शरीर पहले नहीं था, सौ साल बाद नहीं रहेगा और अभी भी नहीं की तरफ जा रहा है। जब शरीर ही सदा नहीं रहेगा तो शरीर से सम्बन्धित रोग और तंदुरुस्ती, अमीरी और गरीबी भी सदा कैसे रहेंगी ? जब भी कोई परेशानी आये तब अपने सत्यस्वरूप की स्मृति करें कि 'शरीर परिवर्तनशील है, मैं शाश्वत हूँ। सुख-दुःख अनित्य है, मैं नित्य हूँ।' अपने नित्य स्वभाव की स्मृति करते-करते उसमें स्थिति पायें।

नश्वर सुख तो ऐसा है जैसे गाल पर थप्पड़

मारकर गाल को लाल किया अथवा खुजली होने पर खुजलाकर जरा आराम पाया। जब तक शाश्वत सुख नहीं मिलता तब तक नश्वर सुख के पीछे पड़ते-पड़ते जीव बेचारा दुःख, परेशानी, तनाव और चिंता में फँसता रहता है।

क्या सच्चा सुख कहीं से आयेगा ? या आप कहीं उसे खोजने के लिए जाओगे ? नहीं, जहाँ आप हैं वहीं सच्चा सुख है, जहाँ आप हैं वहीं सच्चा ज्ञान है, जहाँ आप हैं वहीं सच्चा जीवन है।

दुःख आता है तब भी आप आत्मस्वरूप हो लेकिन घबराकर दुःख के साथ जुड़ जाते हो तो दुःख आपको दबोच लेता है। सुख आता है तब उससे ज्यादा सुखी होने की कोशिश करते हो तो सुख में आकर्षण होने से आपकी वृत्ति उसमें फँस जाती है और आप कमजोर हो जाते हो।

जैसे - हलवाई की दुकान में कड़ाहे में चासनी पड़ी हो तो कोई मूर्ख मक्खी जाकर चासनी में डूब मरती है, किंतु सयानी मक्खी किनारे बैठकर अपना काम बना लेती है। ऐसे ही जो मनुष्य जितना अधिक मूर्ख होता है, उतना ही वह सुख में ज्यादा मजा लेता है और ज्यादा कमजोर हो जाता है। सुख आये तो उसका उपयोग करो, उपभोग मत करो। सुख में डूबो मत, सुख के किनारे रहो क्योंकि वह आयी हुई चीज है इसलिए चली भी जायेगी किंतु अपना आत्मा कभी आता-जाता नहीं है।

ऐसे ही रोग आदि के समय भी अपने नित्य स्वरूप का स्मरण करना चाहिए। बीमारी शरीर में आती है, चिंता मन में आती है, द्वेष बुद्धि में आता है। बुद्धि, मन और शरीर बदलते हैं किंतु अपना आत्मा तो नित्य है। उसकी खोज करो तो महाध्यान हो जायेगा।

ध्यान के समय ध्यान करो किंतु यदि व्यवहार के समय भी इस महाध्यान की स्मृति बनाये रखोगे तो चिंता, शोक और भय से रहित हो जाओगे। उस साक्षीभाव से, नित्य आत्मविचार से जो रस आयेगा, उस रस के आगे दुनिया का रस कोई मायना नहीं रखता।

ध्यान किसका करें ? साक्षीभाव या नित्यभाव का ध्यान करें। प्रभात में नींद से उठकर नित्यभाव का ध्यान बड़ा आसान हो जाता है। व्यक्ति नित्यभाव में जितना टिकेगा, उतना उस पर अनित्य चीजों, अनित्य सुख-दुःखों और अनित्य परिस्थितियों का प्रभाव नहीं पड़ेगा।

दो प्रकार के साधन होते हैं : अवांतर और मुख्य। जैसे - आप मुंबई से अमदावाद रेलगाड़ी या हवाई जहाज से गये, तो यह हो गया मुख्य साधन और घर से स्टेशन अथवा हवाई अड्डे तक आने-जाने में रिक्शा, मोटर, टैक्सी आदि जिन साधनों का उपयोग किया वे हो गये अवांतर साधन। ऐसे ही नित्यतत्त्व की प्राप्ति के लिए मुख्य साधन है - आत्मविचार। बाकी के पूजा-पाठ, कथा-कहानियाँ आदि अवांतर साधन हैं।

जैसे कँटीले वृक्षों के पत्ते, टहनियाँ आदि तोड़ें तो वे फिर से उग जाते हैं, किंतु यदि जड़ में ही कुठाराघात कर दिया तो दुबारा नहीं उगते। ऐसे ही सारे दुःखों की जड़ है अज्ञान। अगर अज्ञान को ज्ञान की कुल्हाड़ी से काट दिया जाय तो फिर जन्म-मरण नहीं होता।

अज्ञान मिटता है आत्मविचार से। बुद्धि को सूक्ष्म बनाने और इसी जन्म में परमात्मा को पाने की कुंजी है - आत्मविचार। सात्त्विक आहार, सत्पुरुषों के संग और सत्शास्त्रों के अध्ययन से भी बुद्धि सूक्ष्म बनती है। फिर 'यह ऐसा है..., वैसा है...'- ऐसा नहीं लगता, वरन् 'सब अपना आत्मा है, अपना ही स्वरूप है।'- ऐसा लगता है।

यह बहुत ऊँची बात है। जो लोग ऊँची समझ के धनी हैं, शराब-कबाब से बचे हैं, संयमी हैं, ईमानदार हैं, उनकी ही बुद्धि आत्मविचार में लग पाती है। इस साधन में ऐसे पुण्यात्माओं की ही रुचि होगी जिन्हें इसी जन्म में सब दुःखों से छूटना है और परम सुख पाना है...

आवश्यक सूचना

संत श्री आसारामजी आश्रम, अमदावाद के दूरभाष क्रमांक बदल गये हैं।

नये क्रमांक हैं : २७५०५०१०, २७५०५०११.

कनकभवन की घोड़ी

*** संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ***

अयोध्या के कनकभवन में होनेवाले उत्सव की गाड़ी में श्यामा नाम की जो घोड़ी जोती जाती थी, वह किसी जन्म की भक्त आत्मा रही होगी। वह अगर किसी महात्मा को देखती तो सिर झुका देती, कोई पर्व आनेवाला होता तो हिनहिनाने लगती। पर्व के दिन उसकी आँखों एवं चाल से विशेष प्रसन्नता छलक पड़ती।

उसके व्यवहार को देखकर महात्मा लोग कहते कि 'जैसे जड़भरत हिरण के शरीर में आये थे, वैसे ही पिछले जन्म की कोई भक्त आत्मा इस घोड़ी के रूप में आयी है। किसी कारण से इसकी भक्ति अधूरी रह गयी, शरीर तो बदल गया किंतु भक्ति के सद्गुण नहीं बदले।'

वह श्यामा घोड़ी बूढ़ी हो गयी। आयोजकों ने उस घोड़ी को टीकमगढ़ भेजने का निश्चय किया। १७ अक्टूबर, १९१७ को टीकमगढ़ जाने के लिए रेलगाड़ी की बोगी भी बुक हो गयी। पैसे भर दिये गये। किंतु १४ अक्टूबर से ही घोड़ी ने दाना-पानी छोड़ दिया। मानों, वह कनकभवन की सेवा और अयोध्या का वास छोड़ना नहीं चाहती थी, किंतु मूक प्राणी की बात कौन सुनता? कैसे भी करके डिब्बे में घास-चारा डालकर घोड़ी को चढ़ा दिया गया।

टीकमगढ़ जाने के लिए जिस गाड़ी में वह डिब्बा लगना था, दैवयोग से रेलवे कर्मचारी वही डिब्बा लगाना भूल गये! स्टेशन मास्टर ने उनको डाँट-फटकारकर डिब्बा खुलवाया तो घोड़ी मरी हुई-सी मिली। उसने आकर कनकभवन के कार्यकर्ताओं को बताया कि 'घोड़ी का डिब्बा लगाना कर्मचारी लोग भूल गये थे, घोड़ी रास्ते में मरती उसकी जगह यहीं मर गयी है। अब आप लोग उसे यहीं दफनाना चाहें तो ले जा सकते हैं।'

कनकभवन के कर्मचारी और घोड़ी की सेवा करनेवाला कर्मचारी आया। वह जानता था कि घोड़ी की आत्मा साधारण आत्मा नहीं है, वरन् भक्त आत्मा है। किसी तरतीव्र प्रारब्ध के कारण वह घोड़ी बनकर आयी है। उस कर्मचारी ने घोड़ी के सिर पर हाथ घुमाते हुए उसके कान में कहा : ''तू टीकमगढ़ नहीं जा रही है, तू अयोध्या में ही है। अयोध्या में ही रहेगी। अब तुझे धकेलकर, उठाकर ले जायें तो हमें परिश्रम पड़ेगा। इससे तो तू ही उठकर चल।''

बस, इतना ही सुनना था कि वह करवट लेकर उठी एवं चलने लगी! मानों, उसने प्राण ऊपर चढ़ा दिये थे।

कई बार पशुयोनि में भी ऐसे जीव आ जाते हैं, जो अपने पूर्वजन्म की साधना को नहीं भूल पाते। कर्मवश उन्हें पशुयोनि तो मिलती है किंतु उस योनि में भी उनकी भगवत्प्रीति प्रकट हुए बिना नहीं रहती।

धन्य है भगवत्प्रीति! हे भक्तिदेवि! तू सदैव सबके हृदय में निवास कर।

सेवाधारियों व सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनी ऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरुआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।

होलिकोत्सव पर पूज्य बापूजी का संदेश

भारतीय संस्कृति का अनोखा पर्व : होली

होली भारतीय संस्कृति की पहचान का एक पुनीत पर्व है। होली... एक संकेत है वसंतोत्सव के रूप में ऋतु-परिवर्तन का... एक अवसर है भेदभाव की भावना को भुलाकर पारस्परिक प्रेम और सद्भावना प्रकट करने का... एक संदेश है जीवन में ईश्वरोपासना एवं प्रभुभक्ति बढ़ाने का...

इस उत्सव ने कितने ही खिन्न मनों को प्रसन्न किया है, कितने ही अशांत-उद्विग्न चेहरों पर रौनक लायी है। होलिकोत्सव से मानव-जाति ने बहुत कुछ लाभ उठाया है। इस उत्सव में लोग एक-दूसरे को अपने-अपने रंग से रँगकर, मन की दूरियों को मिटाकर एक-दूसरे के नजदीक आते हैं।

यह उत्सव जीवन में नया रंग लाने का उत्सव है... आनंद जगाने का उत्सव है... **'परस्पर देवो भव।'** की भावना जगानेवाला उत्सव है... विकारी भावों पर धूल डालने एवं निर्विकार नारायण का प्रेम जगाने का उत्सव है...

हमारी इन्द्रियों, तन और मन पर संसार का रंग पड़ता है और उतर जाता है लेकिन भक्ति और ज्ञान का रंग अगर भूल से भी पड़ जाय तो मृत्यु के बाप की भी ताकत नहीं कि उस रंग को हटा सके। इसी भक्ति और ज्ञान के रंग में खुद को रँगने का पर्व है होली।

होली रंगों का त्यौहार है। यह एक संजीवनी है जो साधक की साधना को पुनर्जीवित करती है। यह समाज में प्रेम का संदेश फैलाने का पर्व है।

होली मात्र लकड़ी के ढेर को जलाने का त्यौहार नहीं है, यह तो चित्त की दुर्बलताओं को दूर करने का, मन की मलिन वासनाओं को जलाने का पवित्र दिन है।

आज के दिन से विलास, वासनाओं का त्याग करके परमात्म-प्रेम, सद्भावना, सहानुभूति, इष्टनिष्ठा, जपनिष्ठा, स्मरणनिष्ठा, सत्संगनिष्ठा, स्वधर्मपालन, करुणा, दया आदि दैवी गुणों का अपने जीवन में विकास करना चाहिए। भक्त प्रह्लाद जैसी दृढ़ ईश्वरनिष्ठा, प्रभुप्रेम, सहनशीलता व समता का आह्वान करना चाहिए।

होली अर्थात् हो ली... अर्थात् जो हो गया सो गया... कल तक जो होना था वह हो चुका... उसे भूल जाओ। निंदा हो गयी सो हो गयी, प्रशंसा हो गयी सो हो गयी, जो कुछ हो गया सो हो गया। तुम रहो मस्ती में, आनंद में।

आइये, आज से एक नया जीवन शुरू करें। जो दीन-हीन हैं, शोषित हैं, उपेक्षित हैं, पीड़ित हैं, अशिक्षित हैं, समाज के उस अंतिम व्यक्ति को भी सहारा दें। जिंदगी का क्या भरोसा ? कोई कार्य ऐसा कर लें कि जिससे हजारों हृदय आशीर्वाद देते रहें। चल निकलें ऐसे पथ पर कि जिस पर चलकर कोई दीवाना प्रह्लाद बन जाय।

होली का उत्सव हमें यही पावन संदेश देता है कि हम भी अपने जीवन में आनेवाली विघ्न-बाधाओं का धैर्यपूर्वक सामना करें एवं कैसी भी विकट परिस्थितियाँ आयें किंतु प्रह्लाद की तरह ही ईश्वर में अपनी श्रद्धा को अडिग बनाये रखें।

जहरीले रंगों के स्थान पर परम शुद्ध, परम पावन परमात्मा के नाम-संकीर्तन के रंग में खुद रँगें और दूसरों को भी रँगायें। छोटे-बड़े, मेरे-तेरे के भेदभाव को भूलकर सबमें उसी एक सत्यस्वरूप, चैतन्यस्वरूप परमात्मा को निहारकर अपना जीवन धन्य बनाने के मार्ग पर अग्रसर हों।

*

तेरहवें अध्याय का माहात्म्य

श्री महादेवजी कहते हैं : पार्वती ! तेरहवें अध्याय की अगाध महिमा का वर्णन सुनो। उसको सुनने से तुम बहुत प्रसन्न होओगी। दक्षिण दिशा में तुंगभद्रा नामक एक बहुत बड़ी नदी है। उसके किनारे हरिहरपुर नामक रमणीय नगर बसा हुआ है। वहाँ हरिहर नाम से साक्षात् भगवान शिवजी विराजमान हैं, जिनके दर्शनमात्र से परम कल्याण की प्राप्ति होती है। हरिहरपुर में हरिदीक्षित नामक एक श्रोत्रिय ब्राह्मण रहते थे, जो तपस्या और स्वाध्याय में संलग्न तथा वेदों में पारंगत विद्वान थे। उनकी स्त्री को लोग दुराचारा कहकर पुकारते थे। इस नाम के अनुसार ही उसके कर्म भी थे। वह सदा अपने पति को कुवाच्य कहती थी। उसने कभी भी उनके साथ शयन नहीं किया। पति से सम्बन्ध रखनेवाले जितने लोग घर पर आते, उन सबको डाँट लगाती और स्वयं कामोन्मत्त होकर निरन्तर व्यभिचारियों के साथ रमण किया करती थी। एक दिन इधर-उधर आते-जाते हुए पुरवासियों से नगर को भरा देख उसने निर्जन तथा दुर्गम वन में अपने लिए संकेत-स्थान बना लिया। एक रात में किसी कामी को न पाकर वह घर के किवाड़ खोल नगर से बाहर संकेत-स्थान पर चली गयी। उस समय उसका चित्त काम से मोहित हो रहा था। वह एक-एक कुंज में तथा प्रत्येक वृक्ष के नीचे जा-जाकर किसी प्रियतम की खोज करने लगी, किंतु उन सभी स्थानों पर उसका परिश्रम व्यर्थ गया। उसे प्रियतम नहीं मिला। तब वह उस वन में नाना प्रकार की बातें कहकर विलाप करने लगी। चारों दिशाओं में घूम-घूमकर वियोगजनित विलाप करती हुई उस स्त्री की आवाज सुनकर उस वन में सोया हुआ एक बाघ जाग उठा और उछलकर उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ वह रो रही थी। उधर वह भी उसे आते देख किसी प्रेमी की आशंका से उसके सामने खड़ी होने के लिए ओट से बाहर निकल आयी। उस समय व्याघ्र ने आकर नखरूपी बाणों के प्रहार से उसे पृथ्वी पर गिरा दिया। इस अवस्था में भी वह कठोर वाणी में चिल्लाती हुई पूछ बैठी : ''अरे बाघ ! तू किसलिए मुझे मारने को यहाँ आया है ?''

उसकी यह बात सुनकर प्रचण्ड पराक्रमी व्याघ्र क्षणभर के लिए उसे अपना ग्रास बनाने से रुक गया और हँसता हुआ-सा बोला : ''दक्षिण देश में मलापहा नामक एक नदी है। उसके तट पर मुनिपर्णा नगरी बसी हुई है। वहाँ पंचलिंग नाम से प्रसिद्ध साक्षात् भगवान शंकर निवास करते हैं। उसी नगरी में मैं ब्राह्मणकुमार होकर रहता था। नदी के किनारे अकेला बैठा रहता और जो यज्ञ के अधिकारी नहीं हैं, उन लोगों से भी यज्ञ कराकर उनका अन्न खाया करता था। इतना ही नहीं, धन के लोभ से मैं सदा अपने वेदपाठ के फल को भी बेचा करता था। मेरा लोभ यहाँ तक बढ़ गया था कि अन्य भिक्षुओं को गालियाँ देकर हटा देता और स्वयं दूसरों को नहीं देने योग्य धन भी जबरदस्ती ले लिया करता था। ऋण लेने के बहाने मैं सब लोगों को छला करता था। तदनन्तर कुछ काल व्यतीत होने पर मैं बूढ़ा हुआ। मेरे बाल सफेद हो गये, आँखों से दिखता न था और मुँह के सारे दाँत गिर गये। इतने पर भी मेरी दान लेने की आदत नहीं छूटी। पर्व आने पर प्रतिग्रह के लोभ से मैं हाथ में कुश लिये तीर्थ के समीप चला जाया करता था। तत्पश्चात् जब मेरे सारे अंग शिथिल हो गये, तब एक बार मैं कुछ धूर्त ब्राह्मणों के घर पर माँगने-खाने के लिए गया। उसी समय मेरे पैर

में कुत्ते ने काट लिया। तत्क्षण मैं मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। मेरे प्राण निकल गये। उसके बाद मैं इस व्याघ्रयोनि में उत्पन्न हुआ। तबसे इस दुर्गम वन में रहता हूँ तथा अपने पूर्व पापों को याद करके कभी धर्मिष्ठ महात्मा, यति, साधु पुरुष तथा सती स्त्रियों को मैं नहीं खाता। पापी-दुराचारी तथा कुलटा स्त्रियों को ही मैं अपना भक्ष्य बनाता हूँ। अतः कुलटा होने के कारण तू अवश्य ही मेरा ग्रास बनेगी।''

यह कहकर वह अपने तीक्ष्ण नखों से उसके शरीर को फाड़कर खा गया। इसके बाद यमराज के दूत उस पापिनी को संयमनीपुरी में ले गये। वहाँ यमराज की आज्ञा से उन्होंने उसे विष्ठा, मूत्र और रक्त से भरे हुए भयानक कुण्डों में अनेकों बार गिराया। करोड़ों कल्पों तक उसमें रखने के बाद उसे वहाँ से ले जाकर सौ मन्वंतरों तक रौरव नरक में रखा। फिर चारों ओर मुँह करके दीन भाव से रोती हुई उस पापिनी को वहाँ से खींचकर दहनानन नामक नरक में गिराया। उस समय उसके केश खुले हुए थे और शरीर भयानक दिखाई देता था। इस प्रकार घोर नरकयातना भोग चुकने पर वह महापापिनी इस लोक में आकर चाण्डाल योनि में उत्पन्न हुई। चाण्डाल के घर में भी प्रतिदिन बढ़ती हुई वह पूर्वजन्म के अभ्यास से पूर्ववत् पापों में प्रवृत्त रही। फिर उसे कोढ़ और क्षयरोग हो गया। नेत्रों में पीड़ा होने लगी फिर कुछ काल के पश्चात् वह अपने पूर्वजन्म के निवासस्थान (हरिहरपुर) को गयी, जहाँ भगवान शिव के अंतःपुर की स्वामिनी जम्भकादेवी विराजमान हैं। वहाँ उसने वासुदेव नामक एक पवित्र ब्राह्मण के दर्शन किये, जो निरन्तर गीता के तेरहवें अध्याय का पाठ किया करता रहता था। उसके मुख से गीता का पाठ सुनते ही वह चाण्डाल शरीर से मुक्त हो गयी और दिव्य देह धारण करके स्वर्गलोग में चली गयी।

'पद्म पुराण' से

श्रीमद्भगवद्गीता के १३वें अध्याय के कुछ श्लोक

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥
असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥
मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥

श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव, दम्भाचरण का अभाव, किसी भी प्राणी को किसी प्रकार भी न सताना, क्षमाभाव, मन-वाणी आदि की सरलता, श्रद्धा-भक्तिसहित गुरु की सेवा, बाहर-भीतर की शुद्धि, अंतःकरण की स्थिरता और मन-इन्द्रियों सहित शरीर का निग्रह। इस लोक और परलोक के सम्पूर्ण भोगों में आसक्ति का अभाव और अहंकार का भी अभाव, जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदि में दुःख और दोषों का बार-बार विचार करना। पुत्र, स्त्री, घर और धन आदि में आसक्ति का अभाव, ममता का न होना तथा प्रिय और अप्रिय की प्राप्ति में सदा ही चित्त का सम रहना। मुझ परमेश्वर में अनन्य योग के द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति तथा एकांत और शुद्ध देश में रहने का स्वभाव और विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय में प्रेम का न होना। अध्यात्मज्ञान में नित्य स्थिति और तत्त्वज्ञान के अर्थरूप परमात्मा को ही देखना - यह सब ज्ञान है और जो इससे विपरीत है, वह अज्ञान है - ऐसा कहा है। (७-११)

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥

उस परमात्मा को कितने ही मनुष्य तो शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि से ध्यान के द्वारा हृदय में देखते हैं। अन्य कितने ही ज्ञानयोग के द्वारा और दूसरे कितने ही कर्मयोग के द्वारा देखते हैं अर्थात् प्राप्त करते हैं। (२४)

व्यवहार-साधना के नियम

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

जो भगवान को पाना चाहते हैं उन्हें अपने व्यवहार में इन ५ नियमों का समावेश कर लेना चाहिए :

(१) अपने स्वभाव से पक्षपात की गंदगी निकालते जायें और तटस्थ रहने की कोशिश करें । यदि निर्णय करना पड़े तो अपनों के प्रति न्याय और दूसरों के प्रति थोड़ी-बहुत उदारता का व्यवहार करें । इससे अंतःकरण शुद्ध रहेगा । पक्षपातपूर्ण व्यवहार करने से भगवत्प्राप्ति कठिन है । अगर कुटुंब को स्नेह से चलाना हो, गृहस्थी की गाड़ी को ठीक से चलाना हो तो भी पक्षपात का अभाव करके तटस्थता से व्यवहार करना चाहिए । इससे व्यवहार भी अच्छा चलता है और परमार्थ की भी प्राप्ति होती है ।

(२) अपने हृदय को बालकवत् निर्दोष रखें । सत्य स्वाभाविक है, नैसर्गिक है और असत्य बनावटी है, उसको ढकने के लिए कई पर्दे-पर-पर्दे चाहिए फिर भी आखिर में खुल ही जाता है । इसलिए जितना हो सके निर्दोष बालक जैसा चित्त बनाने का यत्न करना चाहिए ।

ज्यादा चतुराई न बरतें, ज्यादा कृत्रिमता न दिखायें । घर में मेहमान आयें और स्नेह से, ईमानदारी से उन्हें पानी का प्याला भी देते हो तो भी ठीक है । ज्यादा दिखावा करके उनको प्रभावित करना चाहोगे तो आपकी सच्चाई, सहजता दब जायेगी । किसीको प्रभावित करो मत और किसीसे प्रभावित होओ भी मत । 'तुझमें राम, मुझमें राम...' ऐसा मानकर व्यवहार करोगे तो आपका व्यवहार बालकवत् निर्दोष होने लगेगा ।

(३) मनुष्य को चाहिए कि वह वर्ण, आश्रम, जात-पाँत आदि के अभिमान अथवा ग्लानि में न पड़े ।

(४) व्यर्थ के वाद-विवाद में अपने समय-शक्ति को न खपायें । वाद-विवाद से बचें, कम-से-कम और सारगर्भित बोलें ।

(५) भगवान के भजन में, आत्मविश्रांति पाने में, परमात्म-सुख, परमात्म-आनंद, परमात्म-सामर्थ्य पाने में जो कर्म, विचार, निंदक या मित्र-दोस्त विघ्न-बाधा डालें, उनसे बचें ।

अगर मनुष्य अपने जीवन में व्यवहार-सम्बन्धी इन ५ नियमों को अपना लेता है तो उसे भगवत्स्वरूप को पाने में बड़ी मदद मिलती है ।

ये तो हुए व्यवहार-सम्बन्धी नियम । साधना-सम्बन्धी भी ५ नियम हैं जिन्हें भगवत्प्राप्ति के इच्छुक साधक को अपने जीवन में अपनाने का यत्न अवश्य करना चाहिए । वे नियम हैं :

(१) प्राणिमात्र पर दया करने का भाव रखें । अपराधी के प्रति भी आपके चित्त में मंगल की भावना हो । न्यायाधीश अपराधी के लिए कल्याण की भावना रखकर उसे सजा देता है तो उसे कर्तव्यपालन का तो पुण्य मिलता ही है, साथ ही अपराधी के प्रति भलाई की भावना उसके अंतःकरण को पावन करती है ।

(२) महापुरुषों में कोई दोष न देखें, न ही उनके दोष की बात सुनें ।

(३) बाहर-भीतर से पवित्र रहें । स्नानादि से शरीर को और जप-प्राणायाम से अंतःकरण को स्वच्छ रखें ।

(४) अधिक परिश्रम न करें और अधिक आलसी भी न हों ।

(५) सांसारिक तुच्छ कामनाएँ न बढ़ायें । भगवान का भजन भी निष्काम भाव से करें । 'यह मिल जाय... वह मिल जाय...' सोचकर भजन न करें बल्कि भगवान की प्रीति के लिए भगवान का भजन करें ।

जो मनुष्य व्यवहार व साधना सम्बन्धी उपरोक्त ५-५ नियमों का तत्परता और ईमानदारीपूर्वक पालन करता है, उसका कई जन्मों के संस्कारोंवाला अंतःकरण धीरे-धीरे शुद्ध होने लगता है और शुद्ध अंतःकरण परमात्मा को पाने में भी शीघ्र सफल हो जाता है ।

✻

* संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से *

* स्वार्थी आदमी स्वर्ग में भी नरक बना देगा और निःस्वार्थी जहाँ पैर रखेगा, वहाँ नरक भी स्वर्ग होने लगेगा।
* जो व्यक्ति अपनी आवश्यकताएँ कम करके अपनी आय का सदुपयोग करता है, उसका हृदय जल्दी सत्पद में टिक जाता है।
* 'मन लगे चाहे न लगे मगर भगवान के लिए बैठना ही है।' - ऐसा दृढ़ संकल्प करें। दफ्तर में मन लगता हो चाहे नहीं लगता हो, फिर भी सरकार वेतन देती है तो वह दैवी सरकार कोई दिवालिया थोड़े ही है ?
* भगवान का भजन करो तो जो रूठे हुए होते हैं वे भी राजी हो जाते हैं। भगवान को छोड़कर संसार के पीछे पड़े तो राजी हुए भी नाराज हो जाते हैं।
* जो प्रेम भगवान को करना चाहिए वह अगर बाहर के व्यक्तियों को करने लग गये तो वे कभी-न-कभी रूठ जायेंगे, लेकिन परमात्मा नहीं रूठता। जो कभी नहीं रूठता और कभी मरता भी नहीं वह हमारा राम हमारा आत्मा है, हमारा मालिक है, हमारा पिया है।
* खूनी को सरकार रोटी और कपड़ा देती है। जेल में भी रोटी और कपड़ा मिलता है तो जो भगवान का भजन करे, उसे रोटी और कपड़े की कमी कैसे हो सकती है ? वह तो जहाँ जायेगा वहाँ रोटी, कपड़ा सब हाजिर !
* पशु होते हैं न ! वे पहले घास ऐसे ही खा लेते हैं। फिर बैठे-बैठे जुगाली करते हैं। ऐसे ही तुम भी कथा-सत्संग सुन लो, फिर एकांत में जाकर उसका चिंतन-मनन करो। जितनी देर सुनते हो उससे दस गुना मनन करना चाहिए। मनन से दस गुना निदिध्यासन करना चाहिए।
* मनुष्य यदि व्यर्थ के संकल्प-विकल्पों को कम कर दे तो अल्प काल में ही उसे अनुपम अनुभूति हो सकती है।
* इस संसार में यदि कुछ दुर्लभ है तो वह है जीव को मानव-देह की प्राप्ति होना। मानव-देह मिल जाय तो मोक्ष की इच्छा होना दुर्लभ है। मोक्ष की इच्छा भी हो जाय तो मोक्षमार्ग को प्रकाशित करनेवाले सद्गुरु की प्राप्ति होना अत्यंत दुर्लभ है। परमात्मा की कृपा हो तभी ये तीनों एक साथ प्राप्त हो सकते हैं। जिसको श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु सम्प्राप्त हो गये हैं, वह मानव परम सद्भागी है। श्रीमद् आद्य शंकराचार्यजी ने कहा है : मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व और महापुरुष का आश्रय - ये अति दुर्लभ हैं।
* परमात्मा के नित्यावताररूप ज्ञानी महात्मा के दर्शन तो कई लोगों को हो जाते हैं, लेकिन उनकी वास्तविक पहचान सबको नहीं होती। इससे वे पूर्ण लाभ से वंचित रह जाते हैं। महात्मा के साक्षात्कार के लिए हृदय में अतुलनीय श्रद्धा और प्रेम के पुष्पों की सुगंध चाहिए।
* ईश्वर का अंश और सहज सुखराशि होते हुए भी मनुष्य अपने आत्मसाम्राज्य में प्रतिष्ठित नहीं हो पा रहा है। यह बड़े आश्चर्य की बात है।

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यममन्दिरम्।
शेषास्तिष्ठन्तुमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥

प्रतिदिन प्राणी यमलोक को जा रहे हैं, फिर भी शेष लोग यहाँ स्थायी रहने की इच्छा करते हैं, इससे बड़ा आश्चर्य क्या हो सकता है ?

* आत्मसाम्राज्य को छोड़कर जगत के विनश्वर पदार्थों, परिस्थितियों और व्यक्तियों के मोह में पड़ जाना कोई बुद्धिमानी नहीं है। सबसे बड़ा बुद्धिमान वही है, जो प्राणों का अंत होने से पहले प्राणाधार में, सर्वाधार में अपनी चेतना को जोड़ दे।

*
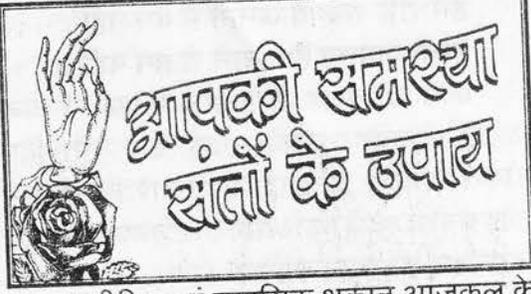
शारीरिक एवं मानसिक थकान आजकल के मानव की आम समस्या बन गयी है। इसने तो मानव का दिन का चैन तक हराम कर दिया है। भागम-भाग, आपाधापी भरे इस भौतिकतावादी युग ने मानव-जाति को शांति व आह्लाद से कोसों दूर कर दिया है। उसे एक मिनट भी चैन नहीं, एक समस्या सुलझी तो चार अन्य मुँह फैलाये खड़ी हैं। तो कैसे मुक्ति पायेंगे आप इस विकराल समस्या से ?

जब आप नैराश्य तथा विषाद की परिस्थिति में हों अथवा अपने-आपको थका हुआ महसूस कर रहे हों या आपके अंतर्मन में ईर्ष्या-विद्वेष अथवा निम्न प्रकृति के विचार जोर मार रहे हों तो आप उस समय थोड़ा सतर्क हो जायें और विचार करें कि 'इस प्रकार के निम्न कोटि के विचार स्वस्थ शरीर में कदापि नहीं आ सकते, हो-न-हो कहीं गड़बड़ी जरूर है।' आपके शरीर का कोई अवयव सुस्ती से काम कर रहा है, इसीलिए आपको ऐसे विचार आये हैं।

जब आप निराशा-हताशा भरे विचारों में गोते खा रहे हों, भय व चिंता ने आपके मन-मस्तिष्क को जकड़ लिया हो, ऐसे अवसर पर आप आलस्य का तुरंत त्याग करें। जिस किसी कार्य में लगे हों उससे पृथक् हो जायें। कुछ सेकेण्ड तक पंजों के बल खड़े होकर थोड़ा कूद लें। खुली हवा में तेजी से टहलें। इस प्रकार आपके श्वास की गति स्वाभाविक रूप से तेज हो जायेगी, श्वास पहले की अपेक्षा गहरे हो जायेंगे। इससे शरीर में नयी शक्ति व स्फूर्ति का संचार होगा। आप अपने को प्रसन्नचित्त व तरोताजा महसूस करने लगेंगे। निराशा-हताशा कहाँ गयी आपको मालूम भी नहीं होगा।

जब आप धीरे-धीरे टहलते हैं तो श्वास का आवागमन पूर्ण रूप से नहीं होता, उसमें गहराई नहीं आती। अतः टहलने के बाद भी आप टहलने का पूरा लुत्फ नहीं उठा पाते, उसके लाभ से वंचित रह जाते हैं। अतः तेज गति से टहलने का प्रयत्न करें।

दूसरा उपाय यह है कि आप टहलने के लिए कोई ऐसा स्थान चुनें, जहाँ आपको कोई विक्षेप न करे। वहाँ खड़े होकर अपना मुँह खोलें और मुँह से हवा को पूरी गहराई से अंदर भर लें। तत्पश्चात् उसे अपने नथुनों से सरलतापूर्वक बाहर छोड़ें। यह प्रक्रिया दृढ़तापूर्वक करें। इस प्रक्रिया को बार-बार करने से आप स्वयं को प्रफुल्लित व तरोताजा पायेंगे। जब भी हताशा-निराशा की परिस्थितियाँ आयें, अपने श्वास की गति को अनुभव करते हुए उसे गहरा करते जायें। इस प्रकार इस क्रिया को बार-बार दोहराने पर आप तुरंत ही निराशा की भावना से मुक्त हो जायेंगे।

जब आप गहरे श्वास लें उस समय अपने मन में निम्न प्रकार की भावना करें तो अधिक लाभ होगा।

'मैं सम्पूर्ण संसार की हवा के घूँट भर रहा हूँ। सम्पूर्ण विश्व से जुड़ा हुआ मैं उसमें ओतप्रोत हो रहा हूँ।' अथवा 'विश्व का सम्पूर्ण सौंदर्य व प्रेम मेरा है' आदि। इस प्रकार से श्वास को देखते हुए व चिंतन करते हुए आप गहरी शांति में डूबते जायेंगे, जहाँ चिंता व भय का नामोनिशान न होगा।

जब आप किसी बाग-बगीचे में टहलने जायें, तब आपका साथी आपके साथ न हो, आप अकेले हों। आप उन एकान्तिक क्षणों में ओंकार की मधुर ध्वनि का मध्यम स्वर में आवर्तन करते जायें। टहलते जायें तथा ॐ का उच्चारण करते जायें। वाणी से उच्चारण छोड़कर धीरे-धीरे अंतर्मन से ओंकार की पवित्र ध्वनि को दुहराते जायें। कुछ ही दिनों के अभ्यास से आप पायेंगे कि आपके मन-मस्तिष्क में उत्तम विचार प्रकट हो रहे हैं। पहले की अपेक्षा आप अधिक कुशलता से निर्णय लेने में सक्षम हैं। आप अपने जीवन में एक नये आनंद, एक नवीन हर्षोल्लास का अनुभव करेंगे।

आप इन प्रयोगों को साधारण समझकर इनकी उपेक्षा न करना। इनमें सूक्ष्मता भरी है, जो आपकी उलझनें मिटाने का सामर्थ्य रखती है।

कृष्णभक्त कारे खान

प्रेम में अपनत्व होता है, निःस्वार्थता होती है, विश्वास होता है, विनम्रता होती है और त्याग होता है। सच पूछो तो प्रेम ही परमात्मा है और ऐसे परम प्रेमस्वरूप, परम प्रेमास्पद श्रीकृष्ण को जिसने भी प्रेम किया है, वह खुद ही प्रेम का सागर बन गया है। चाहे वह किसी भी धर्म, मत, पंथ का क्यों न हो, जिसने भी उस प्यारे कन्हैया से दिल लगाया है, वह निहाल हो गया है। चाहे वे गोप-गोपियाँ हों, मीराबाई हों, ताज हों या रबिया हों, रहीम हों या रसखान हों।

प्रेम जात-पाँत की दीवारें नहीं देखता। जो भी उस परमात्मा को प्रेम से अपना मानते हैं, उसे वे स्वीकार कर लेते हैं। जो जिस रूप में उस परमेश्वर को भजता है, भगवान उसके लिए उसी रूप में प्रकट हो जाते हैं।

कई मुस्लिम कृष्णभक्तों में से एक है कारे खान। वह श्रीक्षेत्र जगन्नाथपुरी का एक मुस्लिम युवक था। कृष्ण-कन्हैया के प्यार में छके रबिया, रहमान, रसखान जैसे कृष्णभक्तों से मुरलीमनोहर की मधुर-मधुर लीलाओं का रसपान करके 'कारे खान' भी कृष्णभक्ति में दिवाना हो गया था।

उसकी इस दीवानगी से उसके परिवार के लोग काफी नाराज थे। उन्होंने उसे बहुत समझाया कि 'पत्थर के भगवान को पूजना अपने धर्म में नहीं है, बेटा! हमें तो उस निराकार अल्लाह पाक का ही शुक्रिया अदा करना चाहिए। उसीकी नमाज अदा करनी चाहिए, कारे!'

लेकिन सच्चे प्रेमी एक बार इस राह पर निकल पड़ें तो फिर पीछे मुड़कर देखना उनके स्वभाव में नहीं होता। वे कहा करते हैं :

हमें रोक सके ये जमाने में दम नहीं।
हमसे जमाना है जमाने से हम नहीं॥

कारे की वजह से समाज में अपनी नाक कटेगी, इसलिए उसके भाई उसे रात-दिन रोकते-टोकते, समझाते। परंतु कारे की भक्ति में कोई कमी न आयी। कुछ लोग उसे 'कृष्ण-दिवाना' कहने लगे तो कुछ 'काफिर'।

'काफिर' याने मूर्तिपूजक, साकार भगवान को माननेवाला। अपने भाइयों के विरोध के बारे में कारे खान लिखता है :

सहा न जाता था, मुस्लिम का बुतपरस्त होना।
भाई सब रोकते, क्यूँ चाहते हो काफिर होना ?

जब भाई थक गये तो उन्होंने धर्मांध मुल्ला-मौलवियों तक यह बात पहुँचायी। उन सबने मिलकर उसे बहुत समझाया। फिर भी कारे खान ने अपना रास्ता नहीं छोड़ा।

विपदाएँ कब रोक सकी हैं आगे बढ़नेवालों को।
बाधाएँ कब बाँध सकी हैं पथ पर चलनेवालों को॥

जब-जब साधक ईश्वर के रास्ते चलता है, तब-तब नासमझ संसारी ही उसे समझाने-बुझाने लगते हैं कि 'यह रास्ता तो अपना नहीं। हमें तो बस कमाओ, खाओ-पियो, संसार में अच्छे-से रहो - यही करना है। साधु-संत बनना अपना काम थोड़े ही है...'

जैसे बाज पक्षी आकाश में ऊँची उड़ान भरता है तो शिकारी ताकता रहता है कि कब इसे निशाना बनाकर नीचे गिराऊँ, वैसे ही संसारी निगुरे ताकते रहते हैं भक्तों को भगवान के रास्ते से डिगाने के लिए। लेकिन उनकी धमकियों और प्रलोभनों से जो डर जाय वह साधक कैसा ?

कारे खान भी पक्का था अपनी निष्ठा में। उसकी अडिगता के आगे मुल्ला-मौलवियों की दाल नहीं गली। उनकी परिस्थिति के बारे में कारे खान लिखता है :

यत्न मौलाना के जब सारे बेकार हुए।
भोग संसार के कारे के लिए खार हुए॥

कारे खान की भक्ति अब और भी रंग लायी! समाज के कट्टरपंथी उसे 'काफिर' कहकर चिढ़ाने

लगे। कृष्णभक्ति से कारे की काव्य-प्रतिभा काफी खिल गयी थी। उसने अपने काव्य में 'काफिर' शब्द की व्याख्या ही बदल डाली। 'जो कोई भक्तों के भक्तिमार्ग में रोड़ा डालता हो, वह काफिर।' ऐसी व्याख्या करके कारे खान ने मूर्तिपूजा-विरोधी मुसलमानों को ही 'काफिर' बोला। सारे मुस्लिम फीके पड़ गये। कारे खान ने लिखा :

क्या मानिन्द जुल्फें हैं मेरे घनश्याम की।
काफिर वो हैं जो बन्दे न हैं इस लाम के॥

अर्थात् घुँघराले बालोंवाले (लाम माने बाल) कृष्ण को जो नहीं मानते हैं वे काफिर हैं।

कारे खान के इस खुले वक्तव्य ने तो सभी मुल्ला-मौलवियों के जले पर नमक छिड़क दिया। उनका तो दिन का चैन और रातों की नींद उड़ गयी।

सबने मिलकर कारे को मस्जिद में बुलाकर खूब समझाया। उनके जमीन-आसमान एक करने के बावजूद भी कारे खान नहीं डिगा तो उसको धमकाया गया। उसे समाज से बहिष्कृत करने की धमकी दी गयी। लेकिन धमकाने से डर जाय वह कारे खान कैसा ? एक बार अपना तन-मन, सब कुछ उसी प्यारे को अर्पण कर दिया तो फिर डर कैसा ? हो-होकर क्या होगा ? बिगड़-बिगड़कर इस नश्वर शरीर का ही तो बिगड़ेगा, मुझ चैतन्य का क्या घाटा ? ऐसी निर्भीकता से वह भर गया था।

सारे प्रयास कर थके हुए धर्मांधों के पास अब एक ही रास्ता था। उन्होंने गुंडों को पैसे देकर कारे खान को सबक सिखाने के लिए भेजा। उसे बहुत शारीरिक यातनाएँ दी गयीं। लेकिन शूर कारे टस-से-मस नहीं हुआ। मारनेवाले थक गये लेकिन कारे खान ने तो अपने-आपको अपने प्रेमास्पद के हवाले कर दिया था।

जाको राखे साँइयाँ, मार सके ना कोई।
बाल न बाँका कर सके, जो जग वैरी होई॥

यह कहावत सार्थक हो गयी। मुल्ला-मौलवियों के डर से अब तो अपने घर के दरवाजे भी कारे खान के लिए बंद हो चुके थे। लेकिन भगवान के भक्त को नश्वर सम्बन्धों के टूटने से क्या डर ? वे तो निराली मस्ती में जीते हैं।

इन सभी विरोधों से तो उसकी प्रेमाभक्ति और भी उफनकर आयी। गम के जहर को मुस्कराकर पीना और हर परिस्थिति में सम रहना तो उसने भगवान श्रीकृष्ण से ही सीखा था।

अपनी इबादत की मस्ती में मस्त कारे खान लिखता है :

धधकती आग की ज्वाला में जला दो मुझको।
तुम्हारी मर्जी हो तो सागर में डुबा दो मुझको॥
चाहे कोई जहरीला साँप कटा दो मुझको।
चाहे पहाड़ की चोटी से गिरा दो मुझको॥
जमीन में गाड़ दो या कुत्तों से चिरा दो मुझको।
आरजू इतनी है मेरी कृष्ण से मिला दो मुझको॥
कृष्ण से मिला दो मुझको...

एक बार कारे खान के सुपुत्र को एक सर्प ने काट लिया। सर्प के काटते ही मासूम लड़का तो बेहोश हो गया। उसका इलाज करने के लिए कोई सामने नहीं आ रहा था। सभी कारे खान से कहने लगे :

"अब आ गयी ना अकल ठिकाने पर ?... देख लिया न 'काफिर' बनने का नतीजा ? बड़ा भगत बना फिरता था काफिरों के उस काले-कलूटे भगवान का... अब पुकार अपने जगन्नाथ को, उस काले-कलूटे कृष्ण को... अब बचा अपने बेटे को। देखते हैं हम, अब वह तेरी मदद कैसे करता है ? हाँ... हाँ... हम भी देखेंगे कैसे बचाता है वह इस मासूम को। करके दिखा इसको जिंदा !''

गाँव की सारी भीड़ तमाशा देखने के लिए उनके इर्द-गिर्द इकट्ठी हो चुकी थी और कारे पर तीक्ष्ण शब्दों के प्रहार कर रही थी। परंतु कारे के चेहरे पर न तो गम की रेखाएँ थीं, न ही अपनी आलोचना का डर। वह तो शांत बैठा था, उस सच्चिदानंद की याद में कि 'प्रभु ! तेरी मर्जी पूरण हो।'

तेरे फूलों से भी प्यार, तेरे काँटों से भी प्यार।
जो भी देना चाहे दे दे करतार, दुनिया के तारणहार॥

ऐसे अलौकिक भाव उसके चेहरे पर उमड़ रहे थे।

भगवान के भक्त भी कमाल के होते हैं। वे अपनी ही मस्ती में जीते हैं। उनके जीने का ढंग कुछ अलग ही होता है। सदैव सम और प्रसन्न रहना उनका स्वभाव होता है। चाहे गम की लम्बी कतारें हों, चाहे खुशी की बहारें - वे तो सदा अपने आपमें - अपने इष्टदेव की प्रीति में ही छके रहते हैं। दुनिया के सारे लोग मिलकर भी उनको प्रभावित नहीं कर सकते। अपनी प्रभुप्रीति से वे अपने साथ अपने सम्पर्क में आनेवालों को भी पावन कर देते हैं। उनके लिए निंदा-स्तुति, मान-अपमान सब सपने की नाईं बीतनेवाले होते हैं।

अब मुल्ला-मौलवियों को मौका मिल गया था कारे को नीचा दिखाने का। उन्होंने खूब प्रचार किया कि 'इस्लाम छोड़कर काफिर बने कारे खान को खुदाताला ने अच्छा सबक सिखाया है। इस्लाम की तौहीन करने का नतीजा बुरा ही होता है...

अगर तेरी भक्ति सच्ची है, तेरा जगन्नाथ भगवान सच्चा है तो दिखा दे अपने बच्चे को जिंदा करके। हम भी देखते हैं तेरे भगवान की खुदाई। अगर तेरा लड़का फिर से जिंदा नहीं होगा तो तुझे फिर से इस्लाम में ही आना पड़ेगा। तेरे उस कृष्ण की भक्ति को हमेशा के लिए छोड़ना पड़ेगा। वैसे रखा भी क्या है इन हिन्दुओं के धर्म में। सब पत्थरों को ही पूजते रहते हैं, काफिर कहीं के...'

एक-एक करके सभी मुल्ला-मौलवी अकेले कारे खान पर बरस रहे थे लेकिन वह अकेला नहीं था, सबका आधार विश्वेश्वर जगन्नाथ उसके साथ था।

भक्त भगवान से दुनिया की चीज-वस्तुएँ नहीं चाहता, न ही सुख-चैन चाहता है। उसे तो बस, भगवान की इच्छा में अपनी इच्छा मिलाना ही आता है : 'प्रभु तेरी मर्जी पूरण हो ! तेरे श्रीचरणों में मेरी प्रीति बनी रहे। जिह्वा सदा तेरा नाम गुनगुनाती रहे। हृदय में बस, तेरा ही ध्यान हो...'

कारे खान को अपने निजी स्वार्थ के लिए, क्षुद्र काम के लिए श्रीकृष्ण को पुकारना पसंद नहीं था पर मुल्ला-मौलवी लोगों की कुटिल जिद देखकर वह भगवान जगन्नाथ से बड़ी विह्वलता से प्रार्थना करते हुए कहता है कि

छलबलकै थाक्यो अनेक गजराज भारी,
भयो बलहीन, जब नेक न छुड़ा गयो।
कहिबेको भयो करुना की, कबि 'कारे' कहैं,
रही नेक नाक और सब ही डुबा गयो॥
पंकज से पायन पयादे पलंग छाँडि,
पावरि बिसरि प्रभु ऐसी परि पा गयो।
हाथी के हृदयमाहिं आधो 'हरि' नाम सोय,
गरे जौ न आयो गरुडेस तौलों आ गयो॥

इस तरह पुकारते-पुकारते वह विश्वाधार की शरण हो गया, उन्हींमें शांत हुआ।

कारे की करुण पुकार सुनकर जगन्नाथपुरी के जगन्नाथ का आसन हिल उठा। अपने भक्त को मुसीबत में देखकर उसकी लाज बचाने के लिए भगवान ने उसके बेटे के बेजान शरीर में प्राण फूँक दिये। देखते-ही-देखते मौत के मुँह में अधमरा-सा पड़ा कारे खान का बेटा जैसे नींद से उठता है, ऐसे उठकर खड़ा हो गया और अपने पिता की छाती से लिपट गया। अहो आश्चर्य ! सभी विरोधियों ने यह दृश्य देखकर दाँतों तले उँगली दबा ली। सभी पत्थर की मूर्तियों-से बनकर आँखें फाड़-फाड़कर यह सारा माजरा देख रहे थे। मुल्ला-मौलवियों की तो जैसे जुबान ही कट गयी। अब तक तो कारे खान को 'कृष्णभक्त, काफिर' कहकर रोकते-टोकते रहते थे, लेकिन आज तो कृष्णभक्ति के चमत्कार, भगवान कृष्ण के सामर्थ्य का साक्षात् अनुभव कर रहे थे सारे ! सबको मानना पड़ा कि कारे खान सही राह पर है। वे सभी कारे खान से माफी माँगने लगे। लड़के को जिंदा पाकर कारे खान के कुटुंबियों को कृष्णभक्ति की महिमा समझ में आयी और वे भी भगवान जगन्नाथ के भक्त बन गये।

महत्त्वपूर्ण निवेदन

सदस्यों के डाक-पते में परिवर्तन अगले **अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य १३७वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया मार्च २००४ के अंत तक अपना नया पता भेज दें।**

वैदिक संकल्प-विद्या

मन का सार संकल्प है और यही हमारे मनोविकास का कारण और आधार भी है। किसी भी कार्य के मूल में संकल्प ही आधार होता है। अथर्ववेद के अनुसार मन की दो धाराएँ हैं - बोध और प्रतिबोध, जिसे आम भाषा में संकल्प-विकल्प कहते हैं। किसी भी कार्य के पूर्ण होने में संकल्प व विकल्प, दोनों का ही समायोजन होता है। जिस प्रकार विद्युत की धनात्मक तथा ऋणात्मक धाराएँ मिलकर बड़ी-बड़ी मशीनों को कार्यान्वित कर देती हैं, उसी प्रकार मन की ये दो धाराएँ किसी भी कार्य के सम्पादन में मूलभूत कारक हैं। संकल्प कार्य को अभीष्ट दिशा प्रदान करता है तो विकल्प अवरोधक बन रहे अवांछनीय तत्त्वों को दूर करने में सहायक होता है, यह इसका सकारात्मक पहलू है। जैसे - 'हमें सत्संग में जाना है।' इस प्रकार का संकल्प हमें संतद्वार पर जाने में प्रवृत्त करता है। लेकिन बीच में ही फिल्म में जाने का संकल्प भी उभरे, जो पूर्व के सत्संकल्प का अवरोधक है, तो इस संकल्प को काटनेवाला विचार कि 'नहीं, हमें फिल्म में नहीं जाना है, हमें सत्संग में ही जाना है। फिल्म में जाने से हमारी हानि ही होगी।' यह, विकल्प होने पर भी सत्संग में जाने में आनेवाले अवरोधों को हटानेवाला है। अतः इसका भी अपना एक महत्त्व है।

इसे दूसरे प्रकार से इस तरह समझ सकते हैं कि सत्संग में जाने में आनेवाले अवरोध जैसे यातायात के साधन नहीं मिलेंगे तो क्या करेंगे ? दूसरा जरूरी काम बीच में आने पर किस प्रकार मार्ग निकालेंगे ? इस प्रकार के नकारात्मक संकल्प भले विकल्प कहे जायें लेकिन हैं मुख्य संकल्प के अवरोधों को हटानेवाले। इनके द्वारा मनुष्य अपने अंदर सद्गुणों एवं सत्प्रवृत्तियों को आरोपित कर निर्बलता और त्रुटियों से बच सकता है। अथर्ववेद में वर्णित ऐसे ही संकल्पों का यहाँ पर उदाहरण के रूप में उल्लेख किया जा रहा है।

(१) पाप-वृत्तियों को हटाने का संकल्प :

परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि।
परेहि न त्वा कामये वृक्षां वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः॥

'ओ मन के पाप ! तू दूर हट जा क्योंकि तू निंदित बातों को पसंद करता है। मैं तुझे नहीं चाहता। तू वृक्षोंवाले वनों में विचरण कर। मेरा मन गौओं और गृह (अर्थात् अपने 'स्व') में सदा लगा रहे।' **(अथर्ववेद : ६.४५.१)**

उक्त मंत्र में मानसिक दुष्प्रवृत्तियों व पापकर्मों को हटाने के लिए दो उपाय बताये गये हैं, एक तो प्रतिबोध द्वारा अर्थात् विकल्प के द्वारा उक्त दुष्कर्म के प्रति बार-बार घृणा उत्पन्न करके, हेय दृष्टि रखते हुए उसका त्याग करना। दूसरा बोध द्वारा अर्थात् मन में सत्संकल्पों का बार-बार आवर्तन करते हुए सत्कार्य की ओर प्रवृत्त होना। जैसे -

'इस पापकर्म को मैं अपने जीवन में कभी नहीं दोहराऊँगा, मैं अपने अंदर से इस दुर्गुण को निकालकर ही रहूँगा। इसे हटाना मेरे लिए कोई कठिन कार्य नहीं है। मैं इसमें अवश्य ही सफल होऊँगा।' आदि।

हमारे मन में अथाह शक्ति के भण्डार पड़े हैं। अब यह हमारे हाथ की बात है कि हम उसे किस दिशा में मोड़ते हैं। हमारे विचार और संकल्प जैसे होंगे, हम वैसे ही हो जायेंगे। इस प्रकार अनावश्यक संकल्पों की उपेक्षा करके अपने मन में सत्संकल्पों को दृढ़ करते हुए हम सन्मार्ग पर सरलता से आगे बढ़ सकते हैं।

(२) आशा, उत्साह और सफलता प्राप्ति का संकल्प :

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।
गोजिद् भूया समश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित्॥

'मेरे दायें हाथ में कर्म एवं बायें हाथ में विजय है। इन दोनों से मैं गौओं (इन्द्रियों और भूमि)

का, अश्वों (शक्तियों और राष्ट्र) का, धन (ऐश्वर्य और अभ्युदय) का, सम्पत्ति, यश एवं शोभा का विजेता बनूँ।' (अथर्ववेद : ७.५०.८)

ईश्वरीय सहायता सर्वत्र हमारे साथ है, अतः हमें कभी भी हताश-निराश नहीं होना चाहिए। किसी भी कार्य की सफलता के लिए निरंतर अध्यवसाय में लगे रहना ही हमारा प्रमुख दायित्व है। हमें अपना दृष्टिकोण हमेशा सकारात्मक रखना चाहिए। सफलता-प्राप्ति के लिए व्यक्ति के अंदर हमेशा यह दृढ़ भावना होनी चाहिए कि 'यह कार्य मेरे लिए बहुत आसान है, यह तो मेरे बायें हाथ का खेल है। मुझे धैर्यपूर्वक अपने कार्य में लगे रहना है, देर-सवेर मैं सफलता प्राप्त करके ही रहूँगा। मुझे सफलता अवश्य मिलेगी।

यदि किन्हीं कारणों से सफलता नहीं मिल रही हो तो उत्साह खोने के बजाय हमें उस परम सत्ता का आश्रय लेकर प्रार्थनापूर्वक उसकी शरण लेनी चाहिए। परमात्मा परम सुहृद और सबके आश्रयदाता हैं। वे हमारे दोषों को अवश्य दूर करेंगे।

इस प्रकार के सत्संकल्पों की सहायता से तथा परमात्मा की शरण लेकर हम अपने कार्य में अवश्यमेव सफल हो सकते हैं।

(3) शक्ति प्राप्त करने के लिए संकल्प :

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्य्यमसि वीर्य्यं मयि धेहि।
बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽस्योजो मयि धेहि।
मन्युरसि मन्युं मयि धेयि। सहोऽसि सहो मयि धेहि॥

'हे परमात्मन्! तू तेजस्वरूप है, मुझमें तेज धारण करा। हे परमात्मन्! तू पराक्रमरूप है, मुझमें पराक्रम डाल। हे परमात्मन्! तू बलस्वरूप है, मुझमें भी बल दे। हे परमात्मन्! तू ओजमय है, मुझमें ओज धारण करा। हे परमात्मन्! तू प्रभावस्वरूप है, मुझमें भी प्रभाव धारण करा। हे परमात्मन्! तू साहसस्वरूप है, मुझमें भी साहस भर।' **(यजुर्वेद : अध्याय १९, मंत्र ९)**

परमात्मा सभी गुणों की खान हैं। हम प्रार्थनापूर्वक उनके सद्गुणों को अपने में सरलता से ग्रहण कर सकते हैं। प्रार्थना की प्रथम पंक्ति के अनुसार परमात्मा को सर्वव्यापी, सर्वाधिष्ठान और परम तेजस्वी रूप में देखते हुए उनमें ही एकाकार होकर हमें उनके तेज को अपने में आवेशित करना चाहिए। इसी प्रकार वीर्यवान बनने के लिए, सात्त्विक बल की प्राप्ति के लिए तथा प्रभाव और साहस को अपने अंदर भरने के लिए ईश्वर की प्रार्थना में हमें तन्मय हो जाना चाहिए।

अपने अन्दर व्याप्त दोषों को दूर करने के लिए तथा सद्गुणों को धारण करने हेतु यह संकल्प बड़ा ही बलप्रद है। प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्यदेव की किरणें हमारी नाभि पर पड़ें इस प्रकार बैठकर उक्त सूत्रों को मानसिक या वाचिक रूप से दोहराते हुए, प्रार्थना व संकल्प करके हम अपने दुर्गुणों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं एवं अपने में सद्गुणों को विकसित कर सकते हैं।

* पापों से दब जाने के लिए तुम्हारा जन्म नहीं हुआ है, पापों से मुक्त होकर हरिरस जगाने के लिए तुम्हारा जन्म हुआ है। अच्छा संग करो, अच्छे संकल्प करो, सत्कर्मों में प्रतिदिन तन-मन लगाया करो। इससे भौतिक विकास, मानसिक प्रसन्नता और आत्मोन्नति अवश्य होगी।

* ईश्वर की प्रीति के लिए जो कार्य होते हैं वे ही सेवाकार्य हैं। दुनिया के जो भी सच्चाई के सेवाकार्य हैं, वे भगवान के भक्त ही कर पाते हैं। भगवान को पाने की इच्छावाले भक्त ही परमात्मा की प्रसन्नता के लिए सेवा करते हैं। बाकी कुर्सी के लिए, पद के लिए, वाहवाही के लिए जो सेवाकार्य किये जाते हैं, वे तो सेवाकार्यों के नाम से अहं पोसने और लोगों को ठगने की बातें हैं।

- पूज्य संत श्री आसारामजी बापू

अध्यात्म-प्रश्नोत्तरी

(विद्यार्थी शिविर, रतलाम, दिसम्बर २००२ में पूज्य बापूजी ने आध्यात्मिक प्रश्नोत्तरी का आयोजन करवाया था । पूज्य बापूजी द्वारा विद्यार्थियों के बीच भारतीय दर्शन के गूढ़ ज्ञान को सहज-सरल शैली में प्रस्तुत करना प्राचीन ऋषिकुल-परंपरा की याद ताजा कर रहा था । आइये, हम भी उस ज्ञान का आस्वादन करें ।)

वेदांतनिष्ठ सद्‌गुरुदेव ! कृपया यह बतायें कि अध्यास क्या है ?

पूज्यश्री : वास्तव में हम हैं चेतन, किंतु हाड़-मांस के शरीर को 'मैं' मानते-मानते देह का **अध्यास** हो गया है ।

दुःख का निमित्त बाहर बना, दुःखाकार वृत्ति अंतःकरण में बनी और दुःखाध्यास हो गया ।

'अरे, तू दुःखी है ?'

'पैर में दुखता है ।'

'तेरे पैर में दुखता है न ? पैर में दुखता नहीं था तब भी तू था ।'

पैर में दुखने की वृत्ति बन गयी । वृत्ति को वृत्ति नहीं जाना, पैर में दुखता है - यह नहीं जाना, इसलिए पैर का और वृत्ति का अध्यास हो गया ।

पूज्य बापूजी ! अध्यस्त, अध्यारोप और अपवाद के विषय में बताने की कृपा करें ।

पूज्यश्री : वस्तु अपनी मूल स्थिति को न छोड़े और उसमें दूसरी वस्तु की प्रतीति हो तो उस दूसरी वस्तु को बोलते हैं **अध्यस्त** । जैसे - रस्सी है । अँधेरे में रस्सी में साँप अध्यस्त हुआ । साँप दिख रहा है रस्सी के आधार पर । रस्सी साँप बनी नहीं, लेकिन रस्सी के बिना साँप नहीं दिखेगा तो साँप रस्सी में **अध्यस्त** हो गया । रस्सी में साँप का**अध्यारोप** कर दिया । किसीने कहा : 'यह तो पानी का रेला है' तो उसने रस्सी पर पानी के रेले का अध्यारोप कर दिया । किसीने कहा कि 'यह तो जंगल की लकड़ी है, डण्डा है' तो उसने डण्डे का अध्यारोप कर दिया । कोई कह दे कि 'अरे ! यह तो रस्सी है' तो अध्यस्त का **अपवाद** हो गया ।

अध्यारोप अपवादाभ्यां निष्प्रपंचे प्रपंचविद्धि ।

पहले शास्त्र अध्यारोप कराते हैं, फिर अपवाद करा देते हैं ।

पूज्यश्री ! अधिष्ठान क्या है यह बताने की कृपा करें ।

पूज्यश्री : अधिष्ठान है आत्मा और अध्यस्त है मन, बुद्धि, शरीर । अधिष्ठान के बिना अध्यस्त नहीं रह सकता । रस्सी के बिना भ्रांति का साँप नहीं रह सकता । सीप के बिना चाँदी नहीं रह सकती । पानी के बिना तरंग, बुलबुले और झाग नहीं रह सकते । ऐसे ही तुम्हारे चेतन आत्मा के बिना मन, बुद्धि और अहंकार नहीं रह सकते ।

विकार अध्यस्त हैं, तुम अधिष्ठान हो । दुःख अध्यस्त है, तुम उसको देखनेवाले हो । सुख अध्यस्त है, तुम उसके द्रष्टा-साक्षी हो । सुख से जुड़े तो भोगी बन जाओगे । दुःख से जुड़े तो निराश हो जाओगे । दुःख के भोगी हताश-निराश होते हैं और सुख के भोगी खोखले होते हैं । तुम्हें न निराश होना है, न खोखला होना है । तुम्हें तो प्रभु के स्वरूप को जानकर मुक्तात्मा, महात्मा होना है ।

ब्रह्मनिष्ठ बापूजी ! विवर्त और परिणाम में क्या अंतर है यह बताने की कृपा करें ।

पूज्यश्री : वस्तु में अपने मूल स्वभाव को छोड़े बिना ही अन्य वस्तु की प्रतीति होना यह **विवर्त** है । सीपी में रूपा दिखना, रस्सी में साँप दिखना विवर्त है । ऐसे ही अखंड ब्रह्म परमात्मा में जगत विवर्त है ।

दूध में से दही बनने की क्रिया को **परिणाम** कहते हैं । दही दूध नहीं बन सकता ।

जगत परब्रह्म परमात्मा में परिणाम नहीं है । परमात्म-सत्ता का परिणाम जगत है, ऐसा जो वाद है वह परिणामवाद है । यह मत वेदों के अनुकूल नहीं है । परब्रह्म परमात्मा में जगत तथा पंचभूत, मन, बुद्धि और अहंकार - ये विवर्त हैं । (क्रमशः)

जब राजा की गाड़ी को ओवरटेक किया गया...

❋ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❋

सन् १९४० के आस-पास बीकानेर की तरफ संत देवा महाराज हो गये । उस समय तो सड़कें कच्ची थीं । केवल राजे-महाराजे ही परदेश से गाड़ियाँ मँगवा सकते थे । भक्तों ने मिलकर देवा महाराज के लिए एक गाड़ी मँगवा दी । महाराज गाड़ी चलाने के शौकीन थे, इसलिए खुद ही गाड़ी चलाते थे ।

गाड़ी एक तो बीकानेर नरेश के पास थी और दूसरी देवा महाराज के पास । देवा महाराज को कभी सड़क पर राजा की गाड़ी मिल जाती तो वे उसे ओवरटेक करके पीछे कर देते । इससे राजा के अहं को चोट लगती । राजा ने चालक से पूछा : ''ये हैं कौन ?''

''ये देवा महाराज हैं । भक्तों ने इन्हें यह गाड़ी दिलवायी है । ये खुद ही गाड़ी चलाते हैं ।''

राजा : ''ये क्या समझते हैं ? जब देखो, ओवरटेक... ओवरटेक...?''

राजा के अहं को चोट लगी और उसने महाराज की गाड़ी जप्त कर ली और मंत्रियों से कहा : ''महाराज को पकड़कर ले आओ ।''

भक्तों को पता चला कि राजा महाराज को पकड़ना चाहते हैं । वे बोलने लगे : 'लगता है राजा की बुद्धि बिगड़ गयी है ।'

किसीका सत्यानाश होनेवाला होता है तब वह संत को छेड़ता है । राजा को समझाने के लिए लोगों ने बड़ी मेहनत की, किंतु राजा न माना । राजा ने महाराज को पकड़ने के लिए पुलिस भेजी । जब पुलिस आनेवाली थी तब भक्त भी वहाँ पहुँच गये और भगवन्नाम का कीर्तन करने लगे ।

भगवन्नाम-कीर्तन से तुमुल ध्वनि पैदा होती है । वहाँ भी एक प्रकार की शक्ति पैदा हो गयी । अब पुलिस की हिम्मत कैसे होती महाराज को पकड़ने की ? अधिकारी पर अधिकारी आये किंतु किसीकी हिम्मत न हुई कि उन्हें पकड़ ले । उन्होंने राजा के पास जाकर कहा : ''राजा साहब ! यहाँ आपका बस नहीं चलेगा, चाहे जो कर लें ।''

राजा साहब और उसकी पुलिस महाराज को पकड़ने में नाकामयाब रही ।

देवा महाराज एकांत साधना के लिए ऋषिकेश चले गये । इधर राजा पर कुदरत का ऐसा कोप हुआ कि वह बीमार पड़ गया और राज्य में अकाल पड़ा । बारिश के दिनों में आस-पास के इलाकों में तो बारिश होती किंतु राजा के इलाके में नहीं होती थी ।

जैसे किसी देश को आतंकवादी घोषित कर देते हैं तो दूसरे देश उसकी मदद नहीं करते, वैसे ही संत को सतानेवालों को प्रकृति मदद नहीं करती । राजा को भक्तों कि बद्दुआ तो मिली ही, साथ में बीमारी में भी किसीकी मदद न मिली और चिंता-तनाव भी इतना हुआ कि केवल २ साल में वह तबाह होकर मर गया ।

जब उनके कुल का दूसरा व्यक्ति राजा बना तब उसने हाथाजोड़ी करके भक्तों को भेजा कि देवा महाराज को मनाकर ले आयें । जब देवा महाराज आये तब राजवी ठाठ-बाट से उनका स्वागत-सत्कार और आदर किया गया ।

बताओ, राज राजा का है कि महाराज का ? राजा का राज तो केवल यहाँ होता है, महाराज का राज तो यहाँ भी होता है और वहाँ (परलोक में) भी ।

नये राजा ने महाराज से प्रार्थना की : ''महाराज ! बरसात हो ऐसी कृपा हो जाय ।''

''ठीक है । कर लेंगे भगवान को प्रार्थना तो हो जायेगी ।''

भक्त इकट्ठे हुए, कीर्तन किया तो दो-तीन दिन में ही बीकानेर में इतनी बारिश... इतनी बारिश हुई कि मानों, गंगा-यमुना-सरस्वती तीनों एक साथ जलधाराओं का रूप लेकर बरस रही हों !

अब देवा महाराज को ज्यादा लोग मानने लगे और भीड़-भड़ाका बढ़ गया। महाराज ने भक्तों से कहा : ''अब तो हम जायेंगे।''

''महाराज ! कहाँ जाओगे ?''

''कहीं भी जायेंगे ?''

''फिर कब आओगे ? कब मिलोगे ?''

''अमुक तिथि को पूरे मिल जायेंगे।''

भक्त समझे कि 'उस तिथि को हमें मिलेंगे' किंतु वे तो बतायी गयी तिथि को पूरे मिल गये अर्थात् ईश्वर के साथ एक हो गये। ऐसे महापुरुष कब, कहाँ से, कैसे चल दें कोई पता थोड़े ही होता है। इसीलिए गोरखनाथजी ने कहा है :

गोरख जागता नर सेविये...

गीता प्रश्नोत्तरी

१३१. पितरों को पूजनेवाले किस लोक को प्राप्त होते हैं ?
१३२. भूतों का पूजन करनेवाले किस लोक को प्राप्त होते हैं ?
१३३. भगवान की पूजा करनेवाले किस लोक को प्राप्त होते हैं ?
१३४. कल्याण की कामना करनेवाले प्राणी को क्या करना चाहिए ?
१३५. भगवान सम्पूर्ण प्राणियों में कैसे रहते हैं ?
१३६. भगवान का कथन है कि 'अगर अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मुझको भजता है, तो वह .... है ?'
१३७. क्या भगवान के भक्त का नाश होता है ?
१३८. स्त्री, शूद्र, वैश्य, चाण्डाल आदि को परम गति कैसे मिलती है ?
१३९. मनुष्य-शरीर प्राप्ति की सार्थकता क्या है ?
१४०. प्राणी के कल्याण के लिए भगवान उससे क्या माँगते हैं ?

पिछले अंक के प्रश्नों के उत्तर

१२१. तीन १२२. यज्ञ, दान और तप १२३. जो कर्मफल की इच्छा त्याग दे १२४. अंतःकरण की प्रसन्नता होने पर १२५. रात्रि में १२६. विज्ञानसहित ज्ञान १२७. कर्मों के आधार पर १२८. भगवान में श्रद्धा से रहित १२९. उनके आसक्तिरहित व उदासीन रहने से १३०. देवलोक को।

[छत्रपति शिवाजी जयंती : ९ मार्च (तिथि अनुसार)]

शिवाजी का साहस

(विद्यार्थियों में साहस, शौर्य, निर्भीकता, आत्म-विश्वास एवं राष्ट्रप्रेम जाग्रत करने के लिए पूज्यश्री विद्यार्थी शिविर में कई प्रसंग सुनाते हैं। उन्हींमें से उद्धृत कुछ प्रसंग :)

१२ वर्षीय शिवाजी एक दिन बीजापुर के मुख्य मार्ग पर घूम रहे थे। वहाँ उन्होंने देखा कि एक कसाई गाय को खींचकर ले जा रहा है। गाय आगे नहीं जा रही थी, किंतु कसाई उसे डण्डे मार-मारकर जबरदस्ती घसीट रहा था।

शिवाजी से यह दृश्य देखा न गया। बालक शिवाजी ने म्यान से तलवार निकाली और कसाई के पास पहुँचकर उसके जिस हाथ में रस्सी थी उस हाथ पर तलवार का ऐसा झटका दिया कि गाय स्वतंत्र हो गयी।

इस घटना को लेकर वहाँ अच्छी-खासी भीड़ इकट्ठी हो गयी लेकिन वीर शिवाजी का रौद्र रूप देखकर किसीकी आगे बढ़ने की हिम्मत नहीं हुई।

इस घटना का समाचार जब दरबार में पहुँचा तो नवाब क्रोध से तिलमिला उठा और शिवाजी के पिता शहाजी से बोला : ''तुम्हारा बेटा बड़ा उपद्रवी जान पड़ता है। शहाजी ! तुम उसे तुरंत बीजापुर से बाहर कहीं भेज दो।''

शहाजी ने आज्ञा स्वीकार कर ली। शिवाजी को उनकी माता के पास भेज दिया गया। वे शिवाजी को बाल्यकाल से ही रामायण-महाभारत आदि की कथाएँ सुनाया करती थीं। साथ ही उन्हें दादोजी कोंडदेव के द्वारा शस्त्रविद्या का

अभ्यास भी करवाती थीं। बचपन में ही शिवाजी ने तोरणा किला जीत लिया था। बाद में तो उनकी ऐसी धाक जम गयी कि सारे यवन उनके नाम से काँपते थे।

वह दिन भी आया जब अपने राज्य से शिवाजी को निकालनेवाले बीजापुर के नवाब ने शिवाजी को स्वतंत्र हिन्दू सम्राट के नाते अपने राज्य में निमंत्रित किया और जब शिवाजी हाथी पर बैठकर बीजापुर के मार्गों से होते हुए दरबार में पहुँचे, तब आगे आकर उनका स्वागत किया और उनके सामने मस्तक झुकाया।

कैसी थी शिवाजी की निर्भीकता! कैसा गजब का था उनका साहस, आत्मविश्वास!

*

स्वधर्मे निधनं श्रेयः...

भगवान श्रीकृष्ण ने 'गीता' में कहा है :

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।

अपने धर्म में मर जाना भी श्रेष्ठ है। पराया धर्म भय को देनेवाला, दुःखदायी और नरकों में ले जानेवाला है।

गीताकार के इन्हीं वचनों को चरितार्थ किया था शिवाजी के बेटे संभाजी ने।

औरंगजेब के सैनिक संभाजी को धोखे से पकड़कर वडे बुद्रुक (जिला पूना, महाराष्ट्र) ले गये और इस बात का संदेशा औरंगजेब को भिजवाया। तब औरंगजेब बहुत खुश होकर वहाँ पहुँचा। जब संभाजी को औरंगजेब के सामने पेश किया गया, तब औरंगजेब ने कहा : ''तुम इस्लाम धर्म स्वीकार कर लोगे तो तुम्हें छोड़ दिया जायेगा।''

संभाजी : ''मैं अपना धर्म नहीं छोड़ूँगा।''

''हम तेरी आँखें निकाल लेंगे। तुझे अंधा कर देंगे।''

''आँखें जायें तो भले जायें, किंतु मेरा धर्म मैं नहीं छोड़ सकता।''

तब औरंगजेब के आदेश से उन क्रूर यवन सैनिकों ने तपी हुई लोहे की सलाखों से संभाजी की आँखें फुड़वा दीं। खून की धाराएँ बह चलीं। लेकिन वह शिवाजी का बेटा था, इस्लाम धर्म को स्वीकार नहीं किया तो नहीं किया।

सैनिक : ''अभी भी मान जा, नहीं तो तेरे टुकड़े-टुकड़े कर देंगे।''

''मैं जिस धर्म में पैदा हुआ उसके साथ गद्दारी नहीं कर सकता।''

क्रूर धर्मांध यवनों ने संभाजी का एक-एक अंग काटकर उसे मार डाला, किंतु संभाजी अपनी धर्मनिष्ठा पर अडिग रहा। उसका शरीर तो छूट गया किंतु धर्म न छूटा। कैसा था भारत का वह वीर सपूत जिसने धर्म के नाम पर जान तक कुर्बान कर दी! मानों, उसने ठान रखा था कि **धड़ दीजे पर धरम न छोड़िये।**

हे भारत के नौजवानो! तुमने ऐसी धरती पर जन्म लिया है जहाँ देह और भोगों की आसक्ति छोड़कर आत्मा की अमरता में अडिग रहनेवाले वीर, बुद्धिमान, संत और आत्मवेत्ता महापुरुष होते रहते हैं। भोग और देह तो छूट ही जायेंगे लेकिन धनभागी वे हैं जो लालच में, भय में आकर अपना धर्म और निष्ठा नहीं छोड़ते। तुम उस देश के वासी हो।

हे अमर आत्मा! मरने-मिटनेवाले शरीर को 'मैं-मेरा' मानना ऊपर-ऊपर से रखो। भीतर से अमर आत्मा में दृढ़ निष्ठा रखो कि किसी भी कीमत पर न प्रलोभन से, न कूटनीति से, न पीड़ाओं से ही अपने धर्म से डिगेंगे। ॐ दृढ़ता... ॐ सजगता... ॐ वीरता... ॐ... ॐ...

** 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका के सभी सेवादारों तथा सदस्यों को सूचित किया जाता है कि 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका की सदस्यता के नवीनीकरण के समय पुराना सदस्यता क्रमांक/रसीद-क्रमांक एवं सदस्यता 'पुरानी' है - ऐसा लिखना अनिवार्य है। जिसकी रसीद में ये नहीं लिखे होंगे, उस सदस्य को नया सदस्य माना जायेगा।*

** नये सदस्यों को सदस्यता के अंतर्गत वर्तमान अंक के अभाव में उसके बदले एक पूर्व प्रकाशित अंक भेजा जायेगा।*

भारतीय संस्कृति में ऋषियों द्वारा प्रणीत हमारी दिनचर्या नियमित है । प्रातः जागरण से लेकर शयन तक की समस्त क्रियाओं के लिए शास्त्रकारों ने अपने दीर्घकालीन अनुभव से ऐसे नियमों का निर्माण किया है, जिनका अनुसरण करके मनुष्य अपने जीवन को सफल कर सकता है ।

जीवन में दिनचर्या का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है । यदि हमारी दिनचर्या सही है तो तन तंदुरुस्त, मन प्रसन्न और बुद्धि कुशाग्र होने में मदद मिलती है एवं प्रत्येक क्षेत्र में सफलता का मार्ग प्रशस्त होता है ।

विद्यार्थी-जीवन की सफलता का अधिकांश श्रेय उसकी दिनचर्या को जाता है क्योंकि समय पर किया गया काम ही सफलता दिलाने में सहायक होता है और यह तभी संभव है जब विद्यार्थी अपने दैनिक जीवन में भी नियमित हो । यहाँ इसी बात को ध्यान में रखते हुए विद्यार्थियों के हित के लिए **'दिनचर्या'** इस लेखमाला का आरंभ किया जा रहा है । यह विद्यार्थियों के अलावा बड़ों के लिए भी उपयोगी है ।

आदर्श दिनचर्या के प्रमुख भाग हैं :

१. ब्राह्ममुहूर्त में जागरण २. शरीर-शुद्धि ३. ईश्वरोपासना ४. आसन ५. अध्ययन ६. भोजन ७. स्कूल, दफ्तर या कार्यालय में ८. खेल या विश्राम ९. संध्या १०. शयन ।

ब्राह्ममुहूर्त में जागरण

हमारी दिनचर्या का आरंभ प्रातः ब्राह्ममुहूर्त में जागरण से होता है । शास्त्रों की आज्ञा है :

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्यते ।

'प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में उठना चाहिए ।'

वेद का उपदेश है :

प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति ।

'प्रातः ब्राह्ममुहूर्त में उठनेवाला व्यक्ति रत्नों को धारण करता है ।'

(ऋग्वेद : १.१२५.१)

आयुर्वेद के आचार्यों ने भी कहा है :

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्तिष्ठेत् स्वस्थो रक्षार्थमायुषः ।
तत्र सर्वाघशान्त्यर्थं स्मरेच्च परमेश्वरम् ॥

'अपने स्वास्थ्य को ठीक रखने, जीवन को सुखमय और आयु को दीर्घ बनाने के लिए व्यक्ति को ब्राह्ममुहूर्त में उठना चाहिए तथा पापों से बचने के लिए प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिए ।'

भोले बाबा ने भी बहुत सुंदर लिखा है :

चौथे पहर में रात के जब पुण्य ब्राह्ममुहूर्त हो ।
दे त्याग निद्रा प्रथम ही मत नींद में अनुरक्त हो ॥

न केवल भारतीय विद्वानों ने अपितु पाश्चात्य विद्वानों ने भी प्रातः जल्दी उठने के महत्त्व का अनुभव किया है :

Early to bed and early to rise, makes
a man healthy, wealthy and wise.

अर्थात् रात्रि में जल्दी सोना और प्रातःकाल जल्दी उठना व्यक्ति को आरोग्यवान, धनवान तथा बुद्धिमान बनाता है ।

कोई भी व्यक्ति ब्राह्ममुहूर्त में उठकर इस अकाट्य सत्य का अनुभव कर सकता है कि प्रातःकाल का वायुमंडल शरीर, इन्द्रियों और मन को प्रिय लगनेवाला तथा स्वास्थ्यप्रद होता है ।

ब्राह्ममुहूर्त में उठनेवाले का स्वास्थ्य, धन, विद्या, बल और तेज बढ़ता है । **जो सूर्योदय के समय भी सोता ही रहता है, उसकी उम्र और बल दोनों घट जाते हैं तथा वह नाना प्रकार की बीमारियों का शिकार हो जाता है । यह पक्की बात है ।**

जो व्यक्ति पूर्ण स्वस्थ और नीरोग रहकर दीर्घायु प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें ब्राह्ममुहूर्त में (रात्रि के अंतिम प्रहर अर्थात् सूर्योदय से सवा दो

घंटे पूर्व) उठ जाना चाहिए । इस समय उठने से आलस्य दूर भाग जाता है और शरीर में फुर्ती का संचार होता है । शरीर स्वस्थ, नीरोग और चित्त प्रसन्न रहता है तथा बुद्धि तीव्र होती है । आत्मचिंतन और प्रभुभक्ति के लिए भी यही समय सर्वोत्तम है । अतः प्रातः ब्राह्ममुहूर्त में उठने का अभ्यास डालिये ।

प्रातःकाल की शुभ वेला में ऊषा देवी अपने दोनों हाथों में स्वास्थ्य, आरोग्य, सुख, शांति, आनंद, धन-धान्य, ओज-तेज, कांति, बल, बुद्धि, मेधा आदि दिव्य संपत्तियों को लेकर आती हैं और उन्हें खुले हाथों वातावरण में लुटाती हैं । अतः जो प्रातःकाल जल्दी जाग जाते हैं, उनका जीवन उन्नत होता है परंतु जो लोग इस समय सोये रहते हैं वे इन लाभों से वंचित रह जाते हैं । किसी कवि ने ठीक ही कहा है :

हर रात के पिछले पहर में, इक दौलत लुटती रहती है ।
जो जागत है सो पावत है, जो सोवत है सो खोवत है ॥

पशु भी प्रातःकाल जल्दी उठ जाते हैं । पक्षी ब्राह्ममुहूर्त में उठकर चहचहाने लगते हैं, कोयल कूकने लगती है, भ्रमर गुंजार कर उठते हैं, कमल खिल जाते हैं, पुष्पों पर एक नयी आभा और कांति छा जाती है । सारा वातावरण मुखरित हो उठता है । आप भी अपने जीवन में परिवर्तन लाओ और प्रातःकाल उठने का अभ्यास बनाओ ।

यदि आप अपने भाग्य को जगाना चाहते हैं, जीवन की परम उन्नति चाहते हैं, नीरोग और स्वस्थ रहकर दीर्घायु प्राप्त करना चाहते हैं, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चारों पुरुषार्थ प्राप्त करना चाहते हैं तो प्रातः जल्दी उठने की आदत डालिये ।

वैसे तो ब्राह्ममुहूर्त में उठना सभीके लिए लाभकारक है लेकिन विद्यार्थियों के लिए तो यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । वास्तव में लिखने-पढ़ने के लिए इससे उपयुक्त समय हो ही नहीं सकता । इस एकांत और सर्वथा शांत वायुमंडल में मस्तिष्क बिल्कुल उर्वर होता है, ज्ञानतंतु रात्रि-विश्राम के बाद नवशक्तियुक्त होते हैं । अतः बौद्धिक कार्य के लिए विशेष श्रम नहीं करना पड़ता और स्मृतिशक्ति भी स्वाभाविक ही उत्तम होती है । इसलिए हमें प्रकृति के इस अमूल्य वरदान से लाभ उठाना चाहिए और बिना किसीकी सहायता के प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त में उठ जाने के अभ्यस्त हो जाना चाहिए । इसके लिए एक छोटी-सी युक्ति पूज्य बापूजी बताते हैं । वे कहते हैं : ''अलार्म घंटी बजा सकता है, पत्नी कंबल हटा सकती है, लेकिन नींद से तुम्हें जगाने का काम तो तुम्हारे सच्चिदानंद परमात्मा ही करते हैं । अतः तुम रात्रि में सोते समय उन्हींकी शरण जाओ, सुबह उठाने के लिए उन्हींसे प्रार्थना करो और दृढ़ संकल्प करो ।''

यदि आपने इस युक्ति का आश्रय लिया और आलस्य का त्याग किया तो फिर कुछ दिनों में आप बिना किसीकी सहायता के स्वयं उठने लगोगे ।

प्रातःकालीन समय का महत्त्व बताते हुए पूज्य बापूजी कहते हैं : ''**जो सूर्योदय से पहले शय्या त्याग देता है, उसके अंतःकरण में सात्त्विक गुण पुष्ट होते हैं ।**

सुधा सरस वायु बहे, कलरव करत विहंग ।
अजब अनोखा जगत में, प्रातःकाल का रंग ॥

जब चन्द्रमा की किरणें शांत हो गयी हों और सूर्य की किरणें अभी धरती पर नहीं पड़ी हों, ऐसी संध्या की वेला में सभी मंत्र जागृत अवस्था में रहते हैं । उस समय किया हुआ जप-प्राणायाम अमिट फल देता है । दृढ़ इच्छाशक्ति, रोग मिटाने तथा परमात्म-प्राप्ति के लिए ४० दिन का प्रयोग करके देखो । यह अमृतवेला है । जिसे वैज्ञानिक सूर्योदय के पहले के हवामान में ओजोन की उपस्थिति कहते हैं, इसीको शास्त्रकारों ने सात्त्विक सामर्थ्यदाता वातावरण कहा है । अतः अमृतवेला का लाभ अवश्य लें । रात्रि का भोजन देर से न करें । सुबह देर से न उठें । सूर्योदय से एकाध घंटा पहले प्राणायाम, जप एवं ध्यान में लग जायें ।''

(क्रमशः)

वे कहते हैं...

पाश्चात्य विचारकों की दृष्टि में भारतीय संस्कृति

मैंने यूरोप और एशिया के सभी धर्मों का अध्ययन किया है, परंतु मुझे उन सबमें हिन्दू धर्म ही सर्वश्रेष्ठ दिखायी देता है। मेरा विश्वास है कि इसके सामने एक दिन समस्त जगत को सिर झुकाना पड़ेगा।

– रोमां रोलां

मैंने ८० वर्ष तक विश्व के सभी बड़े धर्मों का अध्ययन करके पाया कि हिन्दू धर्म के समान पूर्ण, महान और वैज्ञानिक धर्म कोई नहीं है। यदि आप हिन्दू धर्म छोड़ते हैं तो आप अपनी भारतमाता के हृदय में छुरा भोंकते हैं।

– डॉ. एनी बेसेन्ट

यूरोप के प्रथम दार्शनिक प्लेटो और पाइथागोरस, दोनों ने दर्शनशास्त्र का ज्ञान भारतीय गुरुओं से प्राप्त किया।

– मोनियर विलियम्स

पाश्चात्य दर्शनशास्त्र के आदि गुरु आर्य ऋषि हैं, इसमें सन्देह नहीं।

– प्रसिद्ध इतिहासज्ञ लैथब्रीज

यदि हम पक्षपातरहित होकर भलीभाँति परीक्षा करें तो हमको स्वीकार करना होगा कि सारे संसार में साहित्य, धर्म और सभ्यता का प्रसार हिन्दुओं ने किया है।

– श्री डी.ओ. ब्राउन

विश्व के किसी भी धर्म ने इतनी वाहियात, अवैज्ञानिक, आपस में विरोधी और अनैतिक बातों का उपदेश नहीं दिया जितना चर्च ने दिया है।

– टोल्सटोय

बाइबिल पुराने और दकियानूसी अंधविश्वासों का एक बंडल है।

– जॉर्ज बर्नाड शो

हमें गोमांस-भक्षण और शराब पीने की छूट देनेवाला ईसाई धर्म नहीं चाहिए। धर्म-परिवर्तन वह जहर है जो सत्य और व्यक्ति की जड़ों को खोखला कर देता है। मिशनरियों के प्रभाव से हिन्दू परिवार का विदेशी भाषा, वेशभूषा, रीति-रिवाज के द्वारा विघटन हुआ है। यदि मुझे कानून बनाने का अधिकार होता तो मैं धर्म-परिवर्तन बंद करवा देता। इसे तो मिशनरियों ने एक व्यापार बना लिया है पर धर्म आत्मा की उन्नति का विषय है। इसे रोटी, कपड़ा या दवाई के बदले में बेचा या बदला नहीं जा सकता।

– महात्मा गाँधी

मैं ईसाई धर्म को एक अभिशाप मानता हूँ, उसमें आंतरिक विकृति की पराकाष्ठा है। वह द्वेषभाव से भरपूर वृत्ति है। इस भयंकार विष का कोई मारण नहीं। ईसाइयत गुलाम, क्षुद्र और चांडाल का पंथ है।

– फिलोसोफर नित्शे

रोमन कैथोलिक चर्च जब अल्पमत में होती है तो मेमने की तरह शालीन, बराबरी में होती है तो लोमड़ी की तरह चालाक और जब बहुमत में होती है तो प्रभुत्व बनाने के लिए चीते की तरह आक्रामक एवं मारने व अंगहीन करने को तत्पर होती है।

– जेक.टी.चीक

पूज्यश्री के आगामी कार्यक्रम

सूरत (गुज.) : होली ध्यान योग शिविर।
५ से ७ मार्च।
संत श्री आसारामजी आश्रम, जहाँगीरपुरा।
फोन : (०२६१) २७७२२०१, २७७२२०२.

पूर्णिमा दर्शन : ६ मार्च, सूरत में

सनातन सत्य का अमृत

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

कुछ सामाजिक धर्म, कुछ राजनैतिक धर्म और कुछ सांप्रदायिक धर्म होते हैं। कुछ व्यक्तियों द्वारा, पीर-पैगंबरों आदि द्वारा चलाया धर्म होता है। वह मति से चला है इसलिए उसमें मतान्तर होता है। एक होता है सनातन सत्य। उसका इस धरती पर ही नहीं, अखिल ब्रह्माण्ड में शासन है। तीन लोक, चौदह भुवनों में सनातन सत्य का सिद्धांत काम करता है।

सनातन धर्म में प्रतिष्ठित मनुष्य उस सनातन सत्य को प्राप्त करता है जो हर मनुष्य के हृदय में छुपा हुआ है। मनुष्य जितने अंश में सनातन शक्तियों का फायदा उठायेगा, उतना ही उसका जीवन उन्नत होगा। फिर चाहे वे रामतीर्थ हों, विवेकानंद हों, कँवरराम हों, रमण महर्षि हों या फिर कोई राजनैतिक जगत में सेवा करनेवाला हो। जितने अंश में वह सनातन धर्म से सम्बन्ध जोड़ेगा, उतने ही अंश में वह अपने कार्य में सफल होगा। सनातन धर्म हर मनुष्य के अंदर, हर जीव के अंदर और हर दिल के अंदर धड़कनें ले रहा है।

जितना-जितना मनुष्य सनातन धर्म के करीब होता है, उतना ही उसके जीवन में स्नेह, आनंद, भ्रातृत्व, सहयोग की भावना, उदारता आदि का विकास होता है। जितना-जितना मनुष्य संकीर्ण कल्पनाओं में उलझता रहता है, उतना-ही-उतना वह खतरे में है। वह 'धर्म खतरे में है... वे खतरे में हैं... मैं खतरे में हूँ...' ऐसी कल्पनाओं में फँस जाता है। किंतु जिसके विचार महान हैं और जिसका सम्बन्ध उस महान-से-महान चैतन्य से है, वह मनुष्य संकीर्णताओं से ऊपर उठकर शाश्वत सुख को पाता है।

भगवान श्रीरामचंद्रजी के जीवन में सनातन धर्म प्रकट हुआ है। भगवान श्रीकृष्ण के जीवन में भी सनातन धर्म प्रकट हुआ है।

हमारे और आपके जीवन की मुसीबतें क्या हैं ? भगवान श्रीरामजी के जीवन में देखें तो कितनी मुसीबतें थीं ! भगवान श्रीकृष्ण के जीवन में देखें तो कितनी आपत्तियाँ थीं ! किंतु वे सनातन सत्य में प्रतिष्ठित थे, इसलिए उनकी सारी मुसीबतें और आपत्तियाँ, विघ्न और बाधाएँ उनके अनुकूल हो जाती थीं तथा उनके जीवन को चमकाने एवं प्रसिद्धि देने का कारण बन जाती थीं।

श्रीकृष्ण के जीवन में देखें तो उनके आगमन-मात्र से उनके माता-पिता को जेल में जाना पड़ा। आपके आगमन से आपके माता-पिता जेल में तो नहीं गये। श्रीकृष्ण-जन्म के ६ दिन बाद पूतना राक्षसी जहर पिलाने आयी थी। कभी धेनुकासुर आया तो कभी बकासुर, कभी कालिय नाग से टक्कर लेनी पड़ी तो कभी क्रूर मामा कंस से मुलाकात करनी पड़ी। श्रीकृष्ण के जीवन में ऐसी कितनी-कितनी आपत्तियाँ आयीं, फिर भी वे हमेशा मुस्कराते ही रहे।

मुस्कराकर गम का जहर जिनको पीना आ गया।
यह हकीकत है कि जहाँ में उनको जीना आ गया॥

आज का मनुष्य अपने जीवन में उस सनातन सत्य को, उस सनातन अमृत को पाने की आकांक्षा ही नहीं रखता। इसलिए वह सुविधाओं के बीच पनपता है फिर भी रोता है और अंत में खत्म हो जाता है। हमारे बुजुर्गों के पास इतनी सुविधाएँ नहीं थीं जितनी हमारे पास हैं। लेकिन उनमें जितनी सहनशक्ति और धैर्य था, उतना आज के लोगों में नहीं है। इसका कारण यह है कि यह पीढ़ी सनातन सत्य से दूर चली गयी है।

आज के बच्चों को जितनी सुविधाएँ हैं उतनी उनके माता-पिता को बचपन में नहीं थीं। कोई

अपवाद हो तो और बात है लेकिन सामान्य रूप से देखा जाय तो आज जितनी सुविधाएँ हैं, उतनी सुविधाएँ पहले नहीं थीं। फिर भी पहले मनुष्य कुछ भीतर ठहरा हुआ था। आज इतना बाहर हो गया है कि महाराज! सारी सुविधाएँ होने के बावजूद भी वह अशांत है, खिन्न है, दुःखी है और आपस में लड़-झगड़कर अपने को परेशान कर रहा है। मनुष्य खुद अपने को सताये जा रहा है। क्यों ? क्यों सताये जा रहा है ? क्योंकि सनातन अमृत से दूर चला जा रहा है।

मानों न मानों यह हकीकत है।
इश्क इन्सान की जरूरत है॥

मनुष्य की सबसे बड़ी जरूरत यही है कि उसको सच्चा प्रेम, सच्चा आनंद और सच्ची मस्ती मिले। मनुष्य शराब कब पीता है ? भोग-विलास में कब गिरता है ? जब भीतर से ज्यादा दुःखी और बेचैन होता है। मनुष्य जितना विक्षिप्त होता है उतनी ज्यादा गलती करता है। भीतर से जितना ज्यादा दुःखी होता है, बाहर से उतना ही परेशान रहता है। वह भीतर से जितना ज्यादा दरिद्र होता है, बाह्य चीजों की उतनी ही गुलामी करता है।

भीतर का धन जितना ज्यादा विकसित होगा, उतना उसके जीवन में बाहर की चीजों की बेपरवाही रहेगी। धन ज्यादा होने से मनुष्य बड़ा नहीं हो जाता और सौन्दर्य, रूप-लावण्य आ जाने से सुन्दर नहीं हो जाता किंतु सुंदर-से-सुंदर जो चैतन्य आत्मा-परमात्मा है, उसके करीब मनुष्य जितने अंश में आता है, उतना ही सुंदर हो जाता है।

अष्टावक्र मुनि का शरीर नाटा, काया काली और टाँगें टेढ़ी... उम्र केवल १२ वर्ष... फिर भी जनक जैसे बुद्धिमान, विशालकाय पुरुष, विशाल राज्य के स्वामी उनके श्रीचरणों में प्रणाम करके प्रश्न करते हैं : ''भगवन्! संसार का दुःख कैसे मिटे ?''

संसार का मतलब क्या है ? जो सरकता है वह संसार। जो सरकनेवाली चीजें हैं, जो सरकनेवाली देह है, जो सरकनेवाला मन है, जो सरकनेवाले सम्बन्ध हैं उनका आकर्षण कैसे मिटे ? सबका उपयोग करना एक बात है और इनके आकर्षण में फँसकर मर जाना, जन्म-मरण के चक्कर में पड़ना दूसरी बात है।

राजा जनक बुद्धिमान और पुण्यात्मा थे तभी तो अष्टावक्र मुनि जैसे महापुरुष के श्रीचरणों में नत-मस्तक होकर उन्होंने सनातन सत्य के अमृत का पान किया था। राजा जनक यह जानते थे कि यह राज्य पहले अपना नहीं था, बाद में अपना नहीं रहेगा किन्तु वह परमात्मा तो पहले भी अपना था, अभी अपना है और इस देह के नष्ट होने के बाद भी अपना ही रहेगा।

उस परमात्मा के साथ अपना नाता जुड़ जाय, जीवन की शाम होने के पहले जीवनदाता की मुलाकात हो जाय, आँखों की रोशनी कम हो जाय उसके पहले भीतर की आँख खुल जाय और कुटुम्बी स्मशान में छोड़ने को तत्पर हो जायें उसके पहले हम अपने-आपको उस मालिक से मिला दें। यह सनातन उत्कंठा है।

जीवमात्र सुख चाहता है। बालक थोड़ा बड़ा होता है तो पूछता है कि 'यह क्या है ? वह क्या है ?' किंतु वह पूछे कि 'मैं कौन हूँ ?' इसके पहले ही उसका नाम रख दिया जाता है कि तेरा यह नाम है, तेरी यह जाति है... ये सब कल्पित संस्कार घुसेड़ दिये जाते हैं।

जीव अगर 'मैं कौन हूँ ?' के उत्तर की गहराई में जाय तो उसे सनातन चैतन्य-तत्त्व का साक्षात्कार हो जाय।

जिसकी सत्ता से आपकी आँखें देखती हैं, आपके कान सुनते हैं, आपका दिल धड़कता है, आपका मन सोचता है, आपकी बुद्धि निर्णय लेती है तथा जिसकी सत्ता से आपका शरीर बढ़ता है और मिट जाता है, फिर भी जो नहीं मिटता उसको सनातन सत्य कहा है। उस सनातन सत्य में आप जितने अंश में तदाकार होते हैं, उतने ही अंश में आप उन्नत होते हैं।

*

वसंत ऋतु में स्वास्थ्य-प्रदायक प्रयोग

हम देखते हैं कि दिन, रात्रि, ऋतु आदि का प्रभाव संसार के सभी पदार्थों पर पड़ता है, जिससे मनुष्य की आकृति तथा बल में भी परिवर्तन हो जाता है। इस परिवर्तन का मूल कारण पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र और वायु की गति-विशेष ही मानी जाती है। सूर्य जब उत्तर दिशा की ओर गमन करता है तब उस काल को 'उत्तरायण' कहा जाता है। उत्तरायण काल पृथ्वी के सौम्य अंश और प्राणियों के बल को हर लेता है, अतः इसे 'आदान काल' कहते हैं। इसमें सूर्य अपनी तीव्र किरणों द्वारा तथा वायु अपनी रुक्षता से शरीर के स्निग्ध भाग (जलीय अंश) का शोषण कर लेते हैं। परिणामतः शारीरिक दुर्बलता उत्पन्न हो जाती है। आदानकाल के आरंभ में अर्थात् शिशिर ऋतु में शारीरिक बल उत्तम रहता है, परंतु मध्य में अर्थात् वसंत ऋतु में (चैत्र व वैशाख माह) धीरे-धीरे कम होने लगता है और अंत में अर्थात् ग्रीष्म ऋतु में क्षीण हो जाता है।

वसंत ऋतु में सूर्य की तीव्र किरणों से द्रवीभूत हुआ कफ जठराग्नि को मंद कर देता है। जिससे अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होने लगते हैं। रोगोत्पत्ति का कारण यह प्रकुपित कफ और मंदाग्नि ही होता है परंतु इससे अनभिज्ञ लोग छोटी-बड़ी बीमारियों से घबराकर महँगी और जहरीली दवाइयों का उपयोग कर स्वास्थ्य की रक्षा के स्थान पर स्वास्थ्य की और अधिक हानि ही करते रहते हैं। ऋतु-अनुसार स्वास्थ्य-नियमों का पालन तथा सहज उपलब्ध व पूर्णतः सुरक्षित प्राकृतिक वस्तुओं का उपयोग कर हम अपने स्वास्थ्य की रक्षा कर सकते हैं।

वसंत ऋतु में लाभदायी कुछ प्रयोग

* तुलसी के १० मि.ली. रस में उतना ही अदरक का रस व शहद मिलाकर लेने से सर्दी-खाँसी-जुकाम, कफजन्य ज्वर (फ्ल्यू) तथा कास-श्वास में शीघ्र आराम मिलता है।

* सुबह खाली पेट २-३ ग्रा. हरड़े चूर्ण शहद के साथ सेवन करने से कफ-निष्कासन हो जाता है।

* नागरमोथ अथवा सोंठ डालकर उबाला हुआ पानी पीने से कफ का नाश होता है।

* सोंठ, काली मिर्च व पीपर का समभाग चूर्ण बनाकर एक चुटकी चूर्ण शहद में मिलाकर चाटने से भी लाभ होता है।

चैत्र मास में कड़वे नीम की नयी कोंपलें फूटती हैं। नीम की १५-२० कोंपलें २-३ काली मिर्च के साथ खूब चबा-चबाकर खानी चाहिए। १५-२० दिन यह प्रयोग करने से वर्ष भर चर्मरोग, रक्तविकार और ज्वर आदि रोगों से रक्षा होती है।

* कड़वे नीम के फूलों का ३०-४० मि.ली. रस ७ से १५ दिन तक पीने से त्वचाविकार तथा मलेरिया जैसे ज्वर से भी बचाव होता है।

* चैत्र मास में अलोने (बिना नमक का भोजन करने का) व्रत करने से रोगप्रतिकारक शक्ति बढ़ती है। त्वचा, हृदय, गुर्दे (किडनी) आदि के रोग नहीं होते।

कफशामक व जठराग्निवर्धक प्रयोग

२०० ग्राम तुलसीदल, २०० ग्राम अदरक व २०० ग्राम ताजी हल्दी पीसकर उसमें १०० ग्राम आँवला चूर्ण व १०० ग्राम हरड़ चूर्ण मिलायें। आवश्यकतानुसार शहद मिलाकर मटर के बराबर गोलियाँ बनायें। ५ से ७ गोलियाँ दिन में २-३ बार चबाकर खायें। घर बैठे बनायी ये गोलियाँ कफ-वातजन्य असंख्य बीमारियों से आपकी रक्षा करेंगी तथा साधारण कफ को बाहर निकालने के लिए उपयोग में लाये जानेवाले केमिकलयुक्त कफ-एक्सपेक्टोरंट्स (कफ-निस्सारक) से भी आपको सहज में ही छुटकारा दिलायेंगी।

यह अनुभूत प्रयोग रक्तचाप तथा रक्तशर्करा को भी नियंत्रित करता है। रक्त को शुद्ध कर रक्तकणों की वृद्धि करता है। शरीर में संचित मल को बाहर निकालकर शरीर को शुद्ध करके शक्ति, स्फूर्ति व ताजगी प्रदान करता है।

काम-क्रोध पर विजय पायी

एक दिन 'मुंबई मेल' में टिकट चेकिंग करते हुए मैं वातानुकूलित बोगी में पहुँचा। देखा तो मखमल की गद्दी पर टाट का आसन बिछाकर स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज समाधिस्थ हैं। मुझे आश्चर्य हुआ कि जिन प्रथम श्रेणी की वातानुकूलित बोगियों में राजा-महाराजा यात्रा करते हैं ऐसी बोगी और तीसरी श्रेणी की बोगी के बीच इन संत को कोई भेद नहीं लगता। ऐसी बोगियों में भी वे समाधिस्थ होते हैं यह देखकर सिर झुक जाता है।

मैंने पूज्य महाराजश्री को प्रणाम करके कहा :

''आप जैसे संतों के लिए तो सब एक समान है। हर हाल में एकरस रहकर आप मुक्ति का आनंद ले सकते हैं। लेकिन हमारे जैसे गृहस्थों को क्या करना चाहिए ताकि हम भी आप जैसी समता बनाये रखकर जीवन जी सकें ?''

पूज्य महाराजजी ने कहा : ''काम और क्रोध को तू छोड़ दे तो तू भी जीवन्मुक्त हो सकता है। **जहाँ राम तहँ नहीं काम, जहाँ काम तहँ नहीं राम।**

...और क्रोध तो, भाई ! भस्मासुर है। वह तमाम पुण्यों को जलाकर भस्म कर देता है, अंतःकरण को मलिन कर देता है।''

मैंने कहा : ''प्रभु ! अगर आपकी कृपा होगी तो मैं काम-क्रोध को छोड़ पाऊँगा।''

पूज्य महाराजजी ने कहा : ''भाई ! कृपा ऐसे थोड़े ही की जाती है ! संतकृपा के साथ तेरा पुरुषार्थ और दृढ़ता भी चाहिए। पहले तू प्रतिज्ञा कर कि तू जीवनपर्यंत काम और क्रोध से दूर रहेगा... तो मैं तुझे आशीर्वाद दूँ।''

मैंने कहा : ''महाराजजी ! मैं जीवनभर के लिए प्रतिज्ञा तो करूँ लेकिन उसका पालन न कर पाऊँ तो मैं झूठा माना जाऊँगा।''

पूज्य महाराजजी ने कहा : ''अच्छा, पहले तू मेरे समक्ष आठ दिन के लिए प्रतिज्ञा कर। फिर प्रतिज्ञा को एक-एक दिन बढ़ाते जाना। इस प्रकार तू उन बलाओं से बच सकेगा। है कबूल ?''

मैंने हाथ जोड़कर कबूल किया। पूज्य महाराजजी ने आशीर्वाद देकर दो-चार फूल प्रसाद में दिये।

पूज्य महाराजजी ने मेरी जो दो कमजोरियाँ थीं उन पर ही सीधा हमला किया था। मुझे आश्चर्य हुआ कि अन्य कोई भी दुर्गुण छोड़ने का न कहकर इन दो दुर्गुणों के लिए ही उन्होंने प्रतिज्ञा क्यों करवायी ? बाद में मैं इस राज से अवगत हुआ।

दूसरे दिन मैं पैसेन्जर ट्रेन में कानपुर से आगे जा रहा था। सुबह के करीब नौ बजे थे। तीसरी श्रेणी की बोगी में जाकर मैंने यात्रियों के टिकट जाँचने का कार्य शुरू किया। सबसे पहले बर्थ पर सोये हुए एक यात्री के पास जाकर मैंने टिकट दिखाने को कहा तो वह गुस्सा होकर मुझे कहने लगा :

''अंधा है ? देखता नहीं कि मैं सो गया हूँ ? मुझे नींद से जगाने का तुझे क्या अधिकार है ? यह कोई रीत है टिकट के बारे में पूछने की ? ऐसी ही अक्ल है तेरी ?''

ऐसा कुछ-का-कुछ वह बोलता ही गया... बोलता ही गया। मैं भी क्रोधाविष्ट होने लगा किंतु पूज्य महाराजजी के समक्ष ली हुई प्रतिज्ञा मुझे याद थी, अतः क्रोध को ऐसे पी गया मानों, विष की पुड़िया !

मैंने उसे कहा : ''महाशय ! आप ठीक ही कहते हैं कि मुझे बोलने की अक्ल नहीं है, भान नहीं है। देखो, मेरे ये बाल धूप में सफेद हो गये हैं। आपमें बोलने की अक्ल अधिक है, नम्रता है तो कृपा करके सिखाओ कि टिकट के लिए मुझे किस प्रकार आपसे पूछना चाहिए। मैं लाचार हूँ कि 'ड्युटी' के कारण मुझे टिकट चेक करना पड़

रहा है इसलिए मैं आपको कष्ट दे रहा हूँ।''

...और फिर मैंने खूब प्रेम से हाथ जोड़कर विनती की : ''भैया ! कृपा करके कष्ट के लिए मुझे क्षमा करो। मुझे अपना टिकट दिखायेंगे ?''

मेरी नम्रता देखकर वह लज्जित हो गया एवं तुरंत उठ बैठा। जल्दी-जल्दी नीचे उतरकर मुझसे क्षमा माँगते हुए कहने लगा : ''मुझे माफ करना। मैं नींद में था। मैंने आपको पहचाना नहीं था। अब आप अपने मुँह से मुझे कहें कि आपने मुझे माफ किया ?'' यह देखकर मुझे आनंद एवं संतोष हुआ। मैं सोचने लगा कि संतों की आज्ञा मानने में कितनी शक्ति और हित निहित है !

संतों की करुणा कैसा चमत्कारिक परिणाम लाती है ! वह व्यक्ति के प्राकृतिक स्वभाव को भी जड़-मूल से बदल सकती है। अन्यथा, मुझमें क्रोध को नियंत्रण में रखने की कोई शक्ति नहीं थी। मैं पूर्णतया असहाय था फिर भी मुझे महाराजजी की कृपा ने ही समर्थ बनाया। ऐसे संतों के श्रीचरणों में कोटि-कोटि नमस्कार !

- श्री रीजुमल
रिटायर्ड टी. टी. आई., कानपुर.

नेत्रबिंदु का चमत्कार

नेत्ररोग विशेषज्ञ डॉ. अनन्त अग्रवाल संत रामदासजी की आँख का परीक्षण करते हुए।

मेरा सौभाग्य है कि मुझे 'संतकृपा नेत्रबिंदु' (आई ड्रॉप्स) का चमत्कार देखने को मिला। एक संत बाबा शिव रामदास उम्र ८० वर्ष, गीता कुटीर, तपोवन झाड़ी, सप्त सरोवर, हरिद्वार में रहते हैं। उनकी दाहिनी आँख के सफेद मोतिये का ऑपरेशन शांतिकुंज हरिद्वार में आयोजित कैम्प में हुआ। केस बिगड़ गया और काला मोतिया बन गया। दर्द रहने लगा और रोशनी घटने लगी। दोबारा भूमानन्द नेत्र चिकित्सालय में ऑपरेशन हुआ। एब्सल्यूट ग्लूकोमा बताते हुए कहा कि ऑपरेशन से सिरदर्द ठीक हो जायेगा पर रोशनी जाती रहेगी। परंतु अब वे बाबा संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा निर्मित 'संतकृपा नेत्रबिंदु' सुबह-शाम डाल रहे हैं। मैंने उनके नेत्रों का परीक्षण किया। उनकी दाहिनी आँख में उँगली गिनने लायक रोशनी वापस आ गयी है। काले मोतिये का प्रेशर नॉर्मल है। कोर्निया में सूजन नहीं है। वे काफी संतुष्ट थे।

वे बताते हैं : 'आँख पहले लाल रहती थी परंतु अब नहीं है। आश्रम के 'नेत्रबिंदु' से कल्पनातीत लाभ हुआ।' बायीं आँख में भी उन्हें सफेद मोतिया बताया गया था और संशय था कि शायद काला मोतिया भी है। पर आज बायीं आँख भी ठीक है और दोनों आँखों का प्रेशर भी नॉर्मल है। सफेद मोतिया नहीं है और रोशनी काफी अच्छी है। यह 'संतकृपा नेत्रबिंदु' का विलक्षण प्रभाव देखकर मैं भी अपने मरीजों को इसका उपयोग करने की सलाह दूँगा।

- डॉ. अनन्त कुमार अग्रवाल (नेत्ररोग विशेषज्ञ)
एम.बी.बी.एस., एम.एस.(नेत्र),
डी.ओ.एम.एस. (आई), सीतापुर, सहारनपुर (उ.प्र.).

सुंदर ढंग से निर्मित मूर्ति के लिए दो चीजें आवश्यक हैं: एक है अखण्ड, कमीरहित अच्छा संगमरमर का टुकड़ा और दूसरी चीज है कुशल शिल्पी। संगमरमर का टुकड़ा शिल्पी के हाथ में रहना अनिवार्य है, जिससे वह छीनी के द्वारा उसे कुरेदकर सुंदर मूर्ति में परिवर्तित कर सके। इसी प्रकार शिष्य को भी चाहिए कि वह अपने-आपको स्वच्छ और शुद्ध करके बिल्कुल क्षतिरहित संगमरमर के टुकड़े जैसा बनाये और अपने गुरु के कुशल मार्गदर्शन में रख दे, जिससे गुरु छीनी से उसे कुरेदकर प्रभु की दिव्य मूर्ति में परिवर्तित कर सकें।

- आश्रम द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'पंचामृत' से

['ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि]

२५ और २६ जनवरी को **मेसण (जि. साबरकांठा, गुज.)** में पूज्य गुरुदेव का सत्संग-कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। जिसमें स्थानीय भक्तों के साथ साबरकांठा, मेहसाणा और राजस्थान से आये लाखों भक्तों ने लाभ लिया। यहाँ पर दो दिवसीय भंडारे का आयोजन भी हुआ, जिसमें भिलोड़ा, विजयनगर, खेडब्रह्मा आदि क्षेत्रों के आदिवासियों एवं गरीबों ने लाभ लिया।

३१ जनवरी से २ फरवरी तक **संतरामपुर (गुज.)** में पूज्यश्री का सत्संग-कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। प्रथम दिवस श्री सुरेशानंदजी का प्रवचन नियोजित था लेकिन इस दिन के अंतिम सत्र की अंतिम घड़ियों में व्यासपीठ पर प्रेमावतार पूज्य बापूजी के दर्शन-सत्संग से यहाँ के सत्संगियों में उत्साह की लहर दौड़ गयी।

२ फरवरी को यहाँ सम्पन्न भंडारे का दृश्य भारत में हिन्दू-मुस्लिम आपसी सौहार्द का परिचय देनेवाला था। आदिवासियों, गरीबों व गरीब मुस्लिमों तथा बच्चों में वस्त्र, बर्तन, मिठाई, अन्न, तेल, कंबल व अन्य आवश्यक सामग्रियों का वितरण किया गया। साथ ही आर्थिक सहायता भी दी गयी। संतरामपुर व आस-पास के क्षेत्रों से आये हजारों श्रद्धालुओं के साथ मुस्लिम भाई-बहनों ने भी भोजन-प्रसाद लिया।

'पूर्णिमा दर्शनोत्सव' एवं 'विश्वशांति सत्संग समारोह' : देश भर के पूर्णिमा दर्शनार्थियों की उमड़ती भीड़ को २ भागों में बाँटने के लिए ४ व ५ फरवरी को अमदावाद में 'पूर्णिमा दर्शनोत्सव' तथा ६ से ८ फरवरी तक दिल्ली में 'पूर्णिमा दर्शनोत्सव' एवं 'विश्वशांति सत्संग समारोह' सत्संग सम्पन्न हुआ। युक्ति तो थी उमड़नेवाली भावी विशाल जनमेदनी को कम करने की। इस हेतु स्थानीय समिति को अधिक प्रचार-प्रसार न करने के निर्देश भी दिये गये। किंतु आश्चर्य! प्रथम दिन ही राजधानी के रामलीला मैदान पर खड़ा किया गया विशाल सत्संग-पंडाल छोटा पड़ गया।

किसीने ठीक ही कहा है :

माया के रंग देखकर, जीव रहा भटकाय।
सद्गुरु की कृपा बिना, पग-पग धोखा खाय॥

माया के रंग में, जगत के प्रपंच में, दुनिया की झंझटों में रचा-पचा मानव आत्मारामी सद्गुरुदेव की छत्रछाया में शांति का अनुभव करता है। सत्संग में आकर चित्त को झंझटप्रूफ बनाने की कुंजियाँ पाता है।

दिल्ली में सम्पन्न 'विश्वशांति सत्संग समारोह' में आत्मशांति के दाता योगिराज पूज्य बापूजी ने विश्वमानव को आत्मिक शांति का संदेश देते हुए कहा : **''विश्वशांति के लिए नेताओं को यह करना चाहिए, फलानों को यह करना चाहिए इस प्रकार की भाषणबाजी करके मैं नेताओं पर बोझ नहीं थोपना चाहता और तुम पर भी बोझ नहीं थोपना चाहता। तुमको किसी कर्म में प्रवृत्त भी नहीं करना चाहता लेकिन तुम्हारे जो भी कर्म हैं वे कर्मयोग बन जायें, ऐसा मैं चाहता हूँ। इससे तुम्हारे अंतःकरण में शांति आने लगेगी और वह श्वास के द्वारा, रोमकूपों के द्वारा और व्यवहार के द्वारा दूसरों तक भी पहुँच जायेगी, विश्व में भी पहुँच जायेगी। *अशांतस्य कुतः सुखम्?* अशांत व्यक्ति को सुख कहाँ? अशांत व्यक्ति विश्वशांति के भाषण दे सकता है। वह शांति के लिए फिल्म, शराब आदि की शरण ले और विश्वशांति के लिए कुछ भी कहे, उसका कोई मायना नहीं है। हम लोग जब परम शांति में निमग्न होते हैं और साधकों के हृदय से प्रार्थना निकलती है, संकल्प निकलता है, उससे किसी भी भाषण की तुलना नहीं की जा सकती।**

विश्वशांति भाषणों के द्वारा नहीं, सत्संग के द्वारा संभव है। सत्संग में सत् का संग होता है इसलिए लोग शांति पाते हैं।

यह 'विश्वशांति सत्संग समारोह' रंग लायेगा समाज, देश और विदेश में। एक छोटा-सा सेल्युलर फोन भी देश-विदेश में खबरें पहुँचाता है तो सेल्युलर फोन बनानेवाले तुम्हारे तन-मन को जो सत्ता देता है, उस परमात्मा में गोता मारना कितना बड़ा काम करेगा। तुम नहीं जानते फिर भी वह काम करेगा।

बस, विश्वशांति के लिए पहले आपके हृदय में शांति आये। उसका फल जब विश्व के लोगों में बाँटोगे तो विश्वशांति में बढ़ोतरी होगी। पहले आप शांत और आत्मारामी होइये।''

पूज्यश्री ने विश्वशांति का सामूहिक संकल्प भी कराया।

पूज्यश्री की पाकिस्तान यात्रा

मानवमात्र के परम हितैषी पूज्य बापूजी १० फरवरी को 'पाकिस्तान इंटरनेशनल एयरलाइन्स' के जहाज द्वारा दिल्ली से **कराची (पाकिस्तान)** के लिए रवाना हुए।

कराची हवाई अड्डे पर मुस्लिम पायलट भाइयों व प्रबंधकों द्वारा पूज्यश्री की शानदार आगवानी की गयी मानों, स्वयं उनके मुर्शिद ही स्वदेश पधारे हों। रात्रि ८.१५ से १०.३० बजे के दौरान कराची के श्रद्धालु भाइयों द्वारा वहाँ के दरिया किनारे स्थित 'रॉयल क्लब' में पूज्यश्री का भव्य स्वागत समारोह किया गया। श्रद्धालु दर्शनार्थियों की निगाहें इन दरवेश की झलक पाते ही दिवानी-सी हो रही थीं। पूज्यश्री का वह दिव्य आभामंडल एवं सामनेवाले व्यक्ति के मंगल व हित की उनकी शुभ भावना ही ऐसी है, जो व्यक्ति को प्रभावित किये बिना नहीं रहती। भारतवर्ष में हमने देखा ही है और लाखों लोगों का अनुभव भी है कि जो भी पूज्यश्री के सान्निध्य में पहुँच जाते हैं, उनके दर्शन कर लेते हैं वे उनसे प्रभावित हुए बिना रह ही नहीं सकते।

दूसरे दिन ११ फरवरी को दिलबर दरवेश पूज्य बापूजी सड़क मार्ग से टंडो आदम में पहुँचे और वहाँ पहुँचकर अपनी नूरानी निगाहों की बरसात की। यहाँ पर भव्य सत्संग-कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

बेराणी (जि. साँघड, पूर्व में जि. नवाबशाह) गाँव के बाहर बड़ी संख्या में लोग अपने हाथों में गुलाब के फूल लिये पूज्यश्री का इंतजार कर रहे थे। पूज्यश्री का आगमन होने पर समस्त वातावरण उनकी जय-जयकार से गूँज उठा। कुछ लोग अपने मकानों की छत पर खड़े होकर भी इस अपूर्व दृश्य का आनंद ले रहे थे। वहाँ के एम.एल.ए. (विधायक) श्री देवीदास सहित पूरा बेराणी ग्राम खुशी से झूम उठा।

११ फरवरी को ही पूज्य बापूजी शाम ६-३० बजे **शहदादपुर (जि. नवाबशाह)** स्थित 'सवाई दरबार' पहुँचे। वहाँ रात्रि ८-०० बजे प्रवचन प्रारंभ हुआ।

१२ फरवरी को प्रातः ६-४५ बजे पूज्यश्री सड़क मार्ग से **'रहड़की साहब'** के लिए रवाना हुए।

१३ फरवरी को रहड़की साहब में सत्संग-दर्शन व भंडारे का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। शाम को सिंधु नदी की धारा के बीच स्थित साधुबेला आश्रम, सखर होते हुए पूज्यश्री कराची पहुँचे।

१५ फरवरी को **कराची** में सत्संग-कार्यक्रम पूर्वघोषित था ही। पूज्य बापूजी का दर्शन-सत्संग पाने हेतु दरियातट पर स्थित 'गाजी गार्डन' सत्संगियों से खचाखच भर गया। विभिन्न टी.वी. चैनलों के माध्यम से रोज पूज्य बापूजी के दर्शन एवं सत्संग श्रवण करनेवाले श्रद्धालु आज अपने बीच पूज्यश्री को पाकर फूले न समाये। हजारों भाई-बहनों के शुभ संकल्प पूर्ण हुए। उनकी दिली ख्वाइश थी दीक्षा प्राप्त करने की, पर उनके दिल के अरमान दिल में ही रह गये और दिलबर दरवेश पूज्य बापूजी १६ फरवरी को हिन्दुस्तान लौट आये।

*
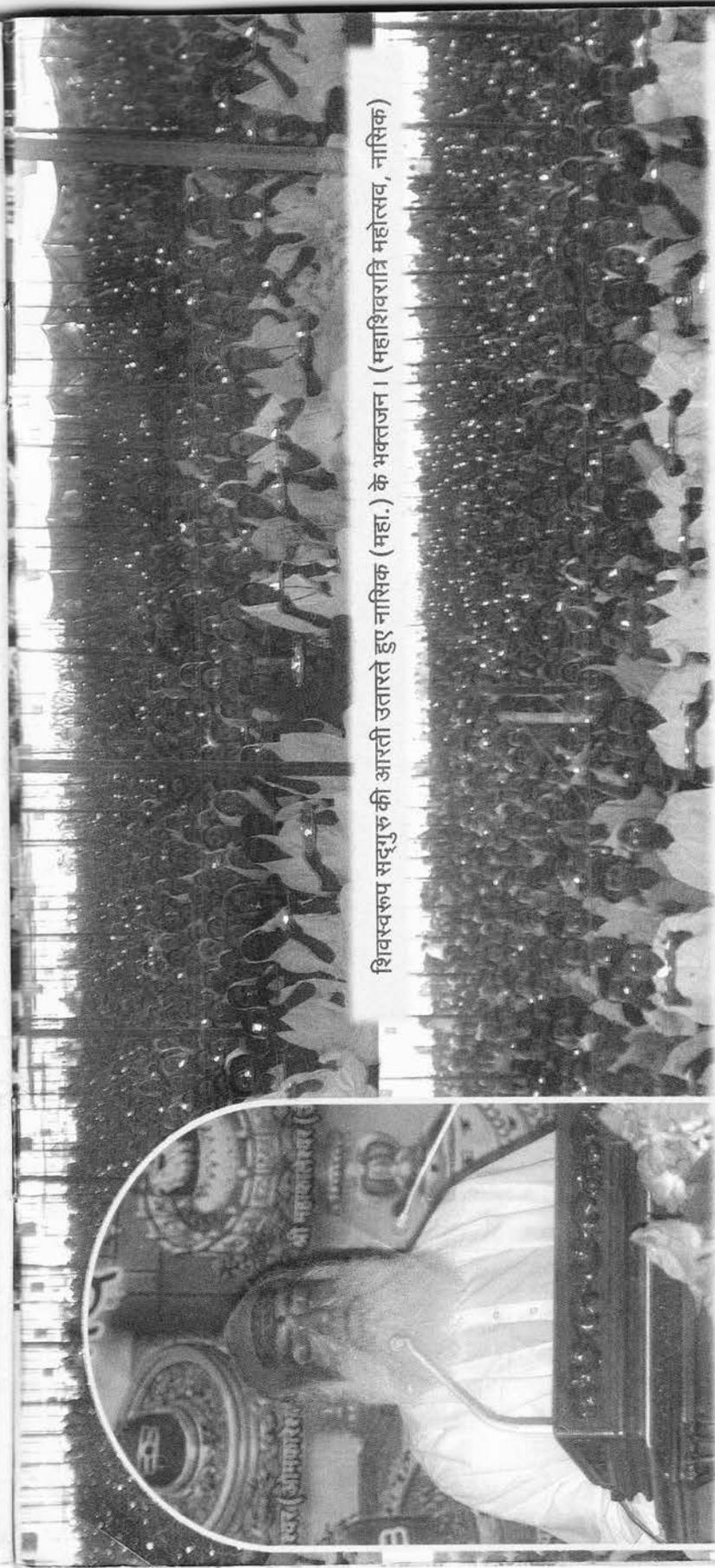
शिवस्वरूप सद्गुरु की आरती उतारते हुए नासिक (महा.) के भक्तजन। (महाशिवरात्रि महोत्सव, नासिक)

पूज्य बापूजी की आरती उतारते व सत्संग-माधुर्य का रसपान करते हुए मेसण (गुज.) वासी।
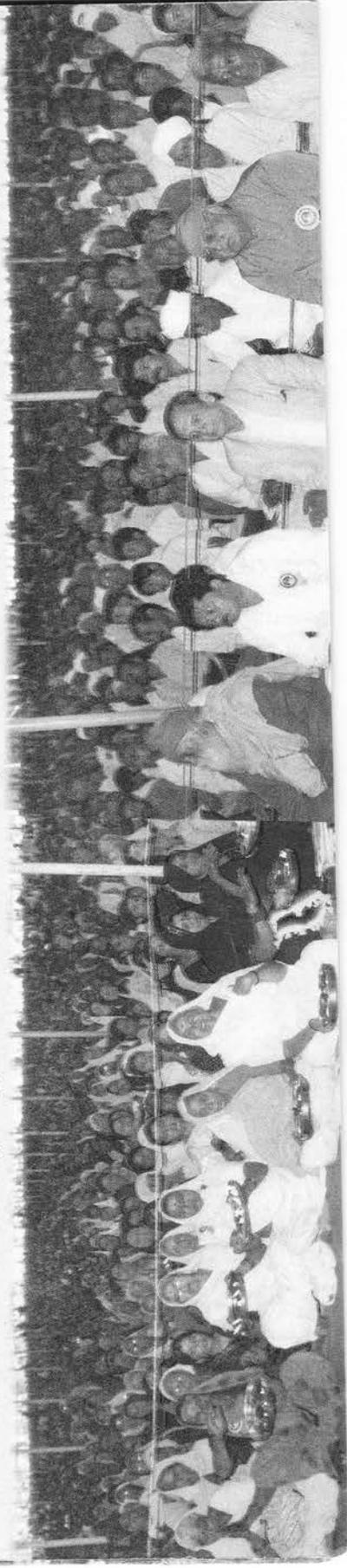
विश्व शान्ति सत्संग समारोह 2004

॥ वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

'विश्वशांति का उद्‌गम आत्मशांति ही है।'

'विश्वशांति सत्संग समोराह, दिल्ली' की कुछ झाँकियाँ।

R.N.I. NO. 48873/91 POSTAL REGISTRATION. NO. GUJ-1132. LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENSE NO. 207. POSTING FROM AHMEDABAD 2-15 OF EVERY MONTH.
* BYCULLA STG. WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO. 236. REGD NO. TECH/47 833/MBI/2003-05 POSTING FROM MUMBAI 9 & 10th OF EVERY MONTH. * FOREIGN POSTING 5 & 6 OF EVERY MONTH FROM AIRPORT PO. - 400099. * DELHI REGD. NO. DL-11513/2003 WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO.-U(C) 232/2003 POSTING FROM DELHI 10-11 OF EVERY MONTH.